ट्रस्ट व प्रबंधकारिणीके सदस्य

ट्रस्टीगण

सदस्यगण

श्री आचार्य कुंथुसागर जैन ग्रंथमाला. पुष्प ४८

पंपयुगके जैनकवि

-लेखक
पं. के. भुजबली शास्त्री.
मूडबिद्री

संपादक व प्रकाशक
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
मंत्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला सोलापूर.
कल्याण भवन, सोलापूर २.

प्रथमावृत्ति ५००) १९७२ अक्टूबर (मूल्य अध्ययन

प्रकाशक
श्री आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला.
कल्याण भवन
सोलापूर २

मुद्रक
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
कल्याण पॉवर प्रिंटिंग प्रेस
कल्याण भवन
सोलापूर २

विश्ववंद्य महर्षि आचार्य

कुंथुसागरजीका अमरजीवन

परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ति आचार्य शातिसागर महाराजके अनेक प्रभावक शिष्योमे आचार्य कुथुसागरजी अलौकिक तेजको प्रकट कर गये, इसमे कोई सदेह नही । आचार्यश्रीको अपने इस शिष्यसे विशिष्ट प्रभावनाकी आशा थी । मामूली पढे लिखे एक साधारण कृषि व्यवसायमे व्यस्त पुरुष अपने अध्यव" साय, लगन व सतत परिश्रमसे अल्पकालमे इतने महान् पुरुष साबित हुआ यह आश्चर्य उत्पन्न किये बिना नही रह सकता है । आचार्यश्रीने आपको मुनिदीक्षाके बाद कुथुसागर नामा-भिधान किया । शायद इसमे भी कोई गूढ सन्निवेश हो । तीर्थंकर परम्परामे भी शातिनाथके बाद कुथुनाथका ही तीर्थ आया था । परन्तु दैवचक्र तो दैवतत्वसे उपेक्षित साधु सतोके प्रति भी अपना प्रभाव दिखाये बिना नही छोडता है । कुछ ही समयके लिये क्यो न हो इस महापुरुषने अपने सुयोग्य गुरुके सुयोग्य शिष्यत्वको सिद्ध किया । इसमे कोई सदेह नही है ।

विश्वोद्धार–आपके हृदयमे विश्वोद्धारकी भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी । आप इस वीतराग शासनको विश्वधर्म सिद्ध कर देना चाहते थे । यही कारण है कि आपने कुछ ही समयमे अपने पुण्यविहारसे जनसाधारणकी दृष्टि इस ओर आकर्षित कर लिया था । सर्व साधारणका अनुराग जैनधर्मके प्रति उत्पन्न हो गया था । और वीतराग धर्मसे जैनेतर समाज भी प्रभावित हुआ था । क्या जैन, क्या वैष्णव, क्या हिन्दू व क्या मुसलमान सभी आचार्यश्रीके भक्त बन गये थे । आचार्यश्रीका

जीवन कुछ समय और होता तो अवश्य ही वे इसे एक प्रभा-वक धर्म सिद्ध करते ।

नरेंद्रवंद्यत्व-अनेक नरेश आपके पदकमलके परमभक्त बने थे । बडोदा राजधानीमे आपका शानदार स्वागत राजकीय लवाजमेके साथ हुआ । प्रधान मिनिस्टरकी उपस्थितिमे आपका सार्वजनिक तत्वोपदेश हुआ था । गुजरात व बागडके प्राय सर्व नरेश आपके परमभक्त थे । अलुवा, टीबा, ओराण, बलासणा सुदासना, पेथापुर, डूगरपूर, बासवाडा, मोहनपुर आदिके नरेश आपका उपदेश सुननेके लिये सदा लालायित रहते थे । इन राजघरानोमे जैनधर्मके प्रति एव जैनसाधुवोके प्रति अनुराग उत्पन्न होनेमे आचार्यश्रीकी आत्मा ही प्रधान कारण है । अनेक राज्योमे आचार्यश्रीके जन्मदिनके उपलक्ष्यमे अहिंसा दिन मनानेकी शाही घोषणा हो चुकी है । वहापर आचार्यश्रीके अमर-जीवनकी ज्योति आचद्रार्क स्थिर रूपसे प्रज्वलित होती रहेगी ।

ग्रंथनिर्माण-- आपने विश्वहितके लिये केवल उपदेशके द्वारा प्रयत्न नही किया है, किन्तु ग्रथनिर्माण कर युगयुगातरमें भी विश्वकल्याणका सदेश विश्वके सामने स्थिर रखनेका प्रशस्त कार्य किया है । आपकी ग्रथनिर्माणशैली अत्यन्त सरल व सुरुचिपूर्ण है । अबालवृद्ध आपके ग्रथोको समझ सकते हैं । विषय अत्यन्त महत्वके होनेपर भी सरल व अनेक उदाहरणोसे स्पष्टीकृत होनेके कारण प्रत्येक व्यक्ति उत्सुकताके साथ उनका स्वाध्याय करते है । आचार्यश्रीकी यह देन जन ससारके लिये ही नही, सारे ससारके लिए एक अलौकिक चीज रहेगी । पूज्यश्रीने बोधामृतसार, ज्ञानामृतसार, श्रावकप्रतिक्रमण, मुनि-प्रतिक्रमण, मुनिधर्मप्रदीप, भावत्रयफलप्रदर्शी, शांतिसुधासिन्धु

आदि अनेक ग्रंथोंकी रचना कर स्वाध्यायप्रेमियोंके प्रति अनंत उपकार किया है। इस प्रकार पूज्यश्रीने कुछ ही समयमें संसारका अपार उपकार किया है। आपने गुजरात व बागडके उद्धारके लिये जो प्रयत्न किया था वह युगायुगांतरमें भी विस्मृत नही हो सकता है। आज भी बागड व गुजरातमे भक्तगण आपके वियोगका भारी अनुभव कर रहे हैं। ऐसे गुरु हमें कब दर्शन देंगे, यह भावना प्रत्येक भावुकके हृदयमे उत्पन्न हो रही है।

आपकी वीतरागता, परमनिस्पृहशांतवृत्ति, तेजोमय मूर्ति, गभीर विचारधारा, वैराग्यमय दिव्यकाय आदि आखोसे कभी ओझल नहीं हो सकते हैं। आपका भौतिकशरीर यहांपर न रहनेपर भी आपके अमर जीवनकी जागृत ज्योति इस ससा-रमे ज्यो का त्यों प्रज्वलित है। संसार आपके परोक्ष चरणोमे श्रद्धाजलि समर्पण करनेमे अपनेको धन्य मानेगा।

प्रकृतग्रंथ– आचार्यश्रीकी स्मृतिमे चलनेवाली श्री आचार्य कुथुसागर ग्रंथमालासे अभीतक करीब४५ग्रथ प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमानमे जैनदर्शनके महान् तार्किकशिरोमणि महर्षि विद्यानद स्वामीके द्वारा विरचित तत्वार्थश्लोकवार्तिकाल-कार ग्रथका प्रकाशन सस्थासे हो रहा है। उस ग्रंथके ६ खड तो प्रकाशित हो चुके है, ७ वा खड और प्रकाशित होगा। उक्त ग्रथसे आज विद्वत्ससारका भारी उपकार हो रहा है। उस बृहत्प्रकाशनके बीचमें ही यह एक लघुकाय ग्रथ हम हमारे सदस्योके हाथमे दे रहे हैं।

श्री परमपूज्य आचार्यश्री कुथुसागरजीने अपने जन्ममे

जिस कर्नाटक प्रातको पुनीत किया, उस प्रातमे जैनधर्मकी प्रभावना करनेवाले महान् अनेक कवि हुये हैं, यह जगवि-दित है । उसमे भी महाकवि पप, रन्न, पोन्न, ये कविरत्नत्रय माने जाते हैं । इन कवियोने अपने विशाल व गभीर काव्योसे कर्नाटक साहित्य की ही नही अपितु जिनधर्मकी अपार सेवा की है । इसलिये इस ग्रथमे सिद्धान्ताचार्य प. के भुजबलि शास्त्रीने पपयुगमे होनेवाले जैन कवियोका परिचय ऐतिहा-सिक क्रमसे कराया है । इससे पाठकोको तो परिचय मिलेगा ही, साथ ही इतिहास सशोधकोको भी बहुत बडी सामग्री प्राप्त हो जायगी । हमारे पूर्वज ग्रथकारोकी कृति व वृत्तिके सबधमे जनसाधारणको परिचय होना आवश्यक है । अन्यथा जनसाधारणमे स्फूर्ति नही आ सकती है । उस दृष्टिसे शास्त्रीजीने जो सामग्री उपस्थित की है, वे धन्यवादके पात्र है ।

तत्वार्थ श्लोकवार्तिकालकारके ७ वे खण्डके प्रकाशनमे थोडा विलम्ब है, इसलिये यह प्रस्तुत ग्रथ हमारे सदस्योकी सेवामे उपस्थित किया जाता है । आचार्यश्रीके द्वारा विरचित १–२ ग्रथ और भी सपादित हो रहे है । वे भी सदस्योके करकमलोमे यथासमय दिये जावेगे, यह आश्वासन दिया जाता है । आशा है कि गुरुभक्त हमार सदस्य यथापूर्व सस्थाके साथ सहयोग प्रदान करेगे ।

विनीत

कल्याण भवन) **वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री**

सोलापूर) मत्री– आ. कुथुसागर ग्रथमाला

श्रीपरमपूज्य, विश्ववद्य, प्रात स्मरणीय

श्रीआचार्य कुंथुसागर महाराज

पंपयुगके जैन कवि

पंप.

[ई. सन् ९४१]

महाकवि पंपके पूर्वज प्रथमतः वैदिक ब्राम्हण थे। इनमें इसके प्रपितामहका पिता माधव सोमयाजि बडे-बडे यज्ञोंके द्वारा कर्णाटकमें पर्याप्त ख्याति पा चुका था। पंपको सोमयाजिकी महिमा पर गौरव था अवश्य। पर साथ ही साथ उसके हिंसामय यज्ञोंसे घृणा भी। माधव सोमयाजिके वंशोत्पन्न अभिरामदेव ही पंपका श्रद्धेय पिता था। यह भी पहले वेदानुयायी था। परंतु हा, पीछे जैनधर्मावलंबी हो गया था। कविता गुणार्णव पंपको अपनी ब्राम्हण जातिपर अवश्य गर्व था। पर साथ ही साथ इस उत्तम जातिमें जन्म लेनेवालोंका पालने योग्य समीचीन धर्म जीवदयामय एकमात्र पवित्र जैनधर्म ही हो सकता है, यो इसकी सच्ची भावना थी। पिता अभिरामदेवने जैनधर्मका आश्रय ले कर अपनी श्रेष्ठ जातिको श्रेष्ठतर बनाया, यों अपने पितापर पंपको बडा अभिमान था।

परंपरागत वैदिकसंस्कृति नवीनागत जैनसंस्कृतिके साथ पंपके जीवनमें इस प्रकार मिल गई, जिसप्रकार दूधमें पानी।

इन संस्कृतियोंमें एकने दूसरीको सहसा नहीं खदेड़ा। पंप उदार था। इसमें धर्मांधता नहीं थी। कविके वंशज वेंगिमंडलके वेंगिपल्लु नामक अग्रहारके निवासी थे। वेंगिमंडल कृष्णा-गोदावरी नदियोंके बीचमें पूर्वसमुद्रतक फैला हुआ एक विशाल देश था। यद्यपि यह आंध्र था, फिर भी हमारे साहित्यमें ख्याति-प्राप्त अनेक कन्नड घराने पहले वहांपर रहे हैं। पंप कहांपर पैदा हुआ, बढा, और पढा यह कहना कठिन है। हां, पीछे यह महाकविके रूपमें वेंगि-मंडलके पश्चिममें, कन्नड सीमाके निकट अवस्थित, लेबुल पाटक [वर्तमान हैदराबादराज्यके करीमनगर जिलान्तर्गत लेमुलवाड] में राज्य करनेवाले, चालुक्यवंशी द्वितीय अरिकेसरीके दरबारमें पहुंचा। इसी दरबारमें रह कर महाकविने अपने अमरकाव्यकी रचना की थी। साथ ही साथ गुणग्राही, प्रतापी राजा अरिकेसरीसे कृतिके योग्य पुरस्कार भी पाया था।

यों तो, वेंगिमंडलसे ही पंपका घनिष्ट-संबंध था। फिर भी इसका हृदय रहा, वहांसे सुदूरवर्ती बनवासिमें। पंपने अपनी कृति ' विक्रमार्जुनविजय ' मे यहांका वर्णन बहुत ही सुंदर ढंगसे किया है। यह भी अनेक देशोंमें पर्यटन कर बनवासिमें आये हुए अर्जुनके मुखसे ही कराया है। विद्वानोंकी राय है कि पंप बनवासि प्रांतके सघन वनोंसे, सुगंधित मनमोहक विविध जातिके पुष्पोंसे एवं वहांकी शीतल सुगंधित हवासे अच्छी तरह परिचित ही नहीं था, इन चीजोंको दीर्घ कालतक वहांपर भोग भी

चुका था। इसीलिये लेबुलपाटककी सर्दी गर्मीमें समय बितानेवाले महाकवि पंपको वे पूर्व स्मृतिया सहसा वहांपर जाग उठी थीं। पंप इतने से ही संतुष्ट न होकर समूचे बनवासिको नंदनवन मान कर कहता है कि मनुष्यको बनवासिमें ही जन्म लेकर रसिक बन कर जीना चाहिये। अगर अपने भाग्यमें इतना नहीं बदा है तो कोयल या भ्रमर बन कर ही सही, वहापर घूमे अवश्य। *

कविकुलगुरु धर्मैकप्राण पंपको बनवासि जैसा पवित्र देश अधिक प्रिय लगना स्वाभाविक ही है। बनवासि वह पवित्र क्षेत्र है। जहापर प्रात.स्मरणीय, **आचार्यप्रवर भगवान् भूतबलिने** पवित्र जैनागमको ग्रथबद्ध किया था। वास्तवमें यह पुण्यक्षेत्र पपके लिये ही नहीं, समूची जैन जनताके लिये पूजनीय है। बहुत कुछ सभव है कि महाकविका विद्याध्ययन भी इसी आदरणीय क्षेत्रमें पुनात जैनाचार्योंके निकट सपन्न हुआ हो। प्रायः ई. पूर्वसे ही यहापर जैनधर्मकी सत्ता मौजद थी। कदंबोंके जमानेमें तो यहापर जैन-धर्म सुचारु रूपसे चारों ओर फैल रहा था। इस बातको अधि-काश विद्वान् सहर्ष मानते हैं कि कदंबवंशमें दीर्घ कालतक जैनधर्म ही राजधर्म रहा। उपर्युक्त बनवासि कदंबोंकी राजधानी थी। इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए कर्णाटककविसार्वभौम पपका विद्याध्ययन बनवासिमे संपन्न हुआ मानना अयुक्तिसंगत नहीं है।

---

* 'विक्रमार्जुनविजय' आश्वास ४, पद्य-२९-३१.

बनवासिसे सम्मानपूर्वक बुलवा कर, वेंगिमंडलकी पश्चिम सीमापर पंपको सादर रखा राजा अरिकेसरीने। पंपके गुणातिशयने अरिकेसरीके मनको एकदम हरलिया था। राजाने महाकविको प्रेमसे बुलवाकर उससे ' विक्रमार्जुनविजय ' की रचना कराई। इसके पुरस्कारमें अरिकेसरीने पंपको यथेष्ट वस्त्र, आभूषणादि बहुमूल्य वस्तुओंको ही नहीं दिया, बल्कि शासन-पूर्वक धर्मपुर नामक एक मनोहर अग्रहार भी। राजाको इतनेसे ही सतोष नहीं हुआ। उसने गुणार्णव पंपको ' कवितागुणार्णव ' नामक उपाधि-द्वारा विशेष सम्मानित किया था। इधर पंप भी पुराणप्रसिद्ध उदात्त राज-गुणोंको अरिकेसरीमें पाकर प्रसन्न था। कविकी दृष्टिमें महाभारतका वीर अर्जुन और राजा अरिकेसरी ये दोनों एक ही जँचे। इसी-लिये अरिकेसरी और अर्जुन इन दोनोंको अभिन्न मान कर भारतकी कथामे अरिकेसरीके चरित्रको मिलाकर कहनेके उद्देश से ही पंपने , विक्रमार्जुनविजय ' की रचना कर डाली। इसके द्वारा महा-कविने वस्तुतः अपने स्वामीकी निर्मल-कीर्तिको सदाके लिये अमर बना दिया। कवितागुणार्णव केवल कवि ही नहीं था, वीर भी अपने स्वामीकी अनेक भयंकर लडाइयोमे पंप वीरतासे लडा भी है *। पंप स्वयं वीर था, इस बातके लिये वीररसप्रधान इसका काव्य ही उज्ज्वल निदर्शन है। इस काव्यमें वीररसकी विमल गंगा सर्वत्र बह चली है।

---

* ' विक्रमार्जुनविजय ' आश्वास १४ पद्य ४९-५०

पंप स्वतंत्र प्रकृतिका स्वाभिमानी कवि था । शासकोंमें शौर्य, औदार्यादि गुणोंके साथ-साथ मद अविवेकादि दुर्गुणोंका होना भी स्वाभाविक है । इसीको सोच कर पंपने स्वयं कहा है कि राजाओंको प्रसन्न रखकर उनके आश्रयमें रहना कष्टसाध्य है । फिर भी मालूम होता है कि अभिमानमूर्ति महाकविके समक्ष ऐसी कोई भी विरुद्ध परिस्थिति उपस्थित नहीं हुई थी । इसका एक मात्र कारण आपसका निष्कपट प्रेम ही रहा होगा । अरिकेसरी और पंपमें स्वामि-भृत्यका व्यवहार कभी नहीं रहा होगा । दोनो एक दूसरेको गौरव एवं स्नेह से ही देखते रहे होगें ।

अरिकेसरीके सहवासमें रह कर प्रायः पंपने यह जान लिया था कि स्वामि भृत्यका निष्कपट स्नेह अबाधारूपसे कितनी दूर तक जा सकता है । इसके लिए अपने अमरकाव्य 'विक्रमार्जुनविजय' में पंपके द्वारा मार्मिक ढंगसे चित्रित दुर्योधन तथा कर्णका निश्चल असीम स्नेह ही उज्ज्वल दृष्टांत है । अरिकेसरीके परिचयके लिए महाकवि पंपने अपने काव्यमें बहुतसा स्थान दे रखा है । इसमें राजाका वंशपरिचय, साहस एवं उपाधियां बडे सुंदर ढंगसे, श्लाघनीयरूपमें विस्तारसे वर्णित है । इतिहासज्ञोंको इन वर्णनोंसे पर्याप्त सहायता मिली है । पंपने अपनेको कदलीगर्भवत् श्यामरंगवाला, मृदु और कुटिल केशवाला, कमलसदृश गोल मुखवाला, मृदु एवं मध्यम देहवाला, हित-मित मृदु वचनवाला,

ललित-मधुर-सुंदर वेषवाला बतलाया है =। वेषभूषण आदिके संबंधमें पंपको विशेष आसक्ति थी। इसने अन्यत्र अपनेको 'ललितालंकरण' लिखा भी है। किस ऋतुमें किस प्रकारकी पोशाक उपादेय है, इस बातको पंप अच्छी तरह जानता था। काव्यरसिक एक विद्वान्‌का मत है कि महाकविने अपनेको 'वनिताकटाक्षकुवलयवनचंद्र' ही नहीं बतलाया है, बल्कि केरल, मलय, आंध्र आदि देशवासी सुंदरियोंसे उसका जो प्रेम था उसे भी इसने निःसंकोच व्यक्त किया है ×। कहनेका तात्पर्य यह है कि पंप सिर्फ एक महाकवि ही नहीं था, रसिक भोगी भी। स्त्रीरूपके समान चित्ताकर्षक विविध जातिके पुष्पोंका भी पंप प्रेमी था। इसके लिए आदिपुराणका ११ वां आश्वास विशेष रूपसे दृष्टव्य है। यों तो पंपको सभी जातिके पुष्प प्रिय थे। फिर भी बेलापर वह विशेष मुग्ध था।

पंपने आदिपुराणकी रचना शा. श. ८६३ [ई. सन् ९४१] के प्लव संवत्सरमें की थी * । इसने उक्त आदिपुराणमें अपनेको

= कदलीगर्भश्यामं। मृदुकुटिलशिरोरुहं सरोरुहवदनम् ॥
मृदुमध्यमतनुहितमित-। मृदुवचनं ललितमधुरसुंदरवेषम् ॥
[आदिपुराण आश्वास १, पद्य २९.]

× 'पंप' पृष्ठ ९.

* 'आदिपुराण' आश्वास १६, पद्य ७६-७७.

दुंदुभि संवत्सरोद्भव प्रकट किया है + । प्लव संवत्सरसे पूर्वका दुंदुभि माने ३९ वर्ष पहले, ई. सन् ९०२ होता है । यह कवितागुणार्णवका जन्मसंवत्सर है । मालूम होता है कि आदिपुराणके रचनाकालमें पंपकी अवस्था ३९ की थी । यह इसके पूर्व ही अरिकेसरीके आश्रयमें आ चुका था । इस बातको कविकी 'कवितागुणार्णव' उपाधि ही बतला रही है । इसके थोडे ही समयके बाद पपने 'विक्रमार्जुनविजय' की रचना की थी । अरिकेसरी चाहता था कि यह ग्रंथ एक सालमें समाप्त हो । कविकुलगुरु महाकवि पपके लिए इतना काल भी अधिक था । इसने इस महाकाव्यको सिर्फ ६ माहमें ही खतम कर डाला । बल्कि आदिपुराण की रचनाके लिए इसे केवल ३ माह ही लगे थे । ×

पंपके दो ग्रंथोंमेंसे एक लौकिक दूसरा आगम या धार्मिक है ।· ।

+ दुंदुभिगभीरनिनदं । दुंदुभिसंवत्सरोद्भवं प्रकटयशो- ॥
दुंदुभिसिंहासन सुर- । दुंदुभिपतिचरणकमलभृङ्गं पंपं ॥
(आदिपुराण आश्वास १, पद्य ३३.)

वत्सकुलतिलकनभिनव- । वत्सलनाभिमानमूर्ति सुकवियशोनि- ॥
र्मत्सरनमृतमयोक्ति श- । रत्समयसुधांशु-विशदकीर्तिवितानं ॥
(आदिपुरण आश्वास १, पद्य ३०)

× 'विक्रमार्जुनविजय' आश्वास १४, पद्य ६०.

+ 'विक्रमार्जुनविजय' आश्वास १४, पद्य ६०.

लौकिक ग्रंथ विक्रमार्जुनविजयका आधार व्यासका महाभारत और आदिपुराणका आधार आचार्य जिनसेनका संस्कृत आदिपुराण है। ऊपर मैं कह चुका हूं कि विक्रमार्जुनविजय सामन्त अरिकेसरीको लक्ष्य करके ही लिखा गया था। अरिकेसरी वैदिक मतानुयायी था। मालूम होता है कि इसीलिए जैन मतानुयायी होकर भी पंपने व्यासके महाभारतको विक्रमार्जुनविजयका आधार माना। फिर भी कविने द्रौपदीको पंचपत्नी न मानकर जैन मान्यतानुसार सिर्फ अर्जुनकी ही पत्नी माना है। इससे आगे चलकर पंपको कुछ असुविधाएं उपस्थित अवश्य हुईं। फिर भी यह अपने सिद्धान्तसे विचलित नहीं हुआ। जैन समाजमें महापुराणका स्थान बहुत ऊंचा है। इसके रचयिता आचार्य जिनसेन सामान्य कवि नहीं थे। 'हिन्दी विश्वकोष' के विद्वान् संपादकके मतसे जिनसेनकी कवित महाकवि कालिदासकी कवितासे किसी भी दृष्टिसे कम नहीं है। बल्कि कहीं-कहीं उससे भी बढ़कर *। आचार्य जिनसेनका पार्श्वाभ्युदय (काव्य) संस्कृत साहित्य-भाण्डारमें एक बेजोड़ रत्न है। महापुराणकी गंभीर वर्णनशैलीसे प्रसन्न हो कर ही पंपने उसे अपने आदिपुराणका आधार माना होगा। पंपने आदिपुराणसे सिर्फ कथासारको ही नहीं लिया है; भाव एवं जहां तहां वचन तथा पद्योंकी छाया भी। कुछ भी हो, पंपका आदिपुराण एक सर्व-

---

* इसके लिए 'हिन्दी विश्वकोष' मे जिनसेन शब्द द्रष्टव्य है।

श्रेष्ठ काव्य है। पंपने इसमें जैनधर्मका रहस्य सुंदर ढंगसे समझाया है। जिनसेनके आदिपुराणका कथासार ही पंपके आदिपुराणका कथासार है। फिर भी कन्नड साहित्यकी दृष्टिसे यह एक अपूर्व रत्न है। पंपने ललितांग-स्वयंप्रभा, श्रीमती-वज्रजंघ, नीलांजनाका नृत्य आदि प्रकरणोंको अपने शब्द और भावमें बहुत ही सजीव ढंगसे वर्णन किया है।

महाकविका पद मिलना आसान काम नहीं है। यह केवल प्रतिभासे ही प्राप्य वस्तु है। ऐसी प्रतिभा पुण्यसे मिलती है। साथ ही साथ ऐसे प्रतिभाशाली कविको पानेके लिए जनताको भी पुण्य चाहिये। इसमें संदेह नहीं है कि पंपके जन्मसे सैकडों वर्ष पूर्व कन्नड भाषामें काव्योंकी रचना हो चुकी थी। गद्य पद्योंकी रचनाओं के अतिरिक्त अनेक शासन कन्नड भाषामे ही अंकित किये गये थे। राष्ट्रकूट चक्रवर्ती नृपतुंगके नामसे 'कविराजमार्ग' नामक एक अलंकार ग्रंथ तथा गुणगाक उपाधिधारी पूर्वचालुक्य राजाके नामसे एक छन्द शास्त्रकी रचना भी की जा चुकी थी। फिर भी पंपके समयसे कन्नड साहित्यमे एक नया युग ही प्रारंभ हुआ। इसके बादके जैन हो या जैनेतर, सभी चंपू काव्योंका आदर्श पंपकी ही कृतियां हैं। महाकवि रन्न, अभिनव पंप आदि बादके कवियोंमेंसे अपनी २ रुचिके अनुसार किसीने रस, किसीने रीति इस प्रकार

सब किसीने कुछ न कुछ महाकवि पंपकी कृतियोंसे उधार अवश्य लिया है। कवि मधुरके मतसे पंप कन्नडका आदिकवि है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्यमें महाकवि कालिदास अग्रकवि है, उसी प्रकार कन्नड साहित्यमे महाकवि पंप अग्रकवि है। प्राय: दोनोके मनोधर्ममें भी सदृशता पाई जाती है।

नृपतुंग तथा गुणगाक पंपसे पहलेके हैं अवश्य। परंतु उनके ग्रंथ काव्य नहीं है, लक्षण ग्रंथ हैं। यह बात ठीक है कि पपसे पहले ही काव्योंका जन्म हो चुका था। पर खेदकी बात है कि उन काव्योमेंसे एक भी अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ है। इसालिये पपको ही कन्नडका आदिकवि मानना बिलकुल युक्तिसंगत है। लगभग ई० सन् ९०० से १२०० तक कन्नडमें बहुतसे चंपूग्रंथ रचे गये थे। इन सबोका आदर्श पंपके चंपू ही हैं। इसीलिये बादके रन्न, दुर्गसिंह, नयसेन, नागवर्म, अग्गल, जन्न और कमलभव आदि प्राय सभी कन्नड कवियोंने अपनी रचनाओमे महाकवि पंपको बडे आदरके साथ स्मरण किया है। बल्कि नाग चंद्र तो पंपपर इतना मुग्ध हो गया था कि उसने अपना नाम ही अभिनव पप रख लिया था। विद्वानोकी रायसे उक्त चंपू-युग पंपका युग है। ख्यातिप्राप्त अधिकाश कन्नड कवि इसी युगमे पैदा हुए थे। इस दृटिसे यह युग वस्तुत. कन्नड साहित्यका सुवर्ण-युग है। जैनेतर समाजमें पंपकी ख्याति विक्रमार्जुनविजयसे फैली होगी।

महाभारतका अर्जुन ही नायक है। आश्रयदाता अरिकेसरीके गुणोंसे मुग्ध होकर अर्जुनके गुणोंके साथ अरिकेसरीके गुणोंकी तुलना करनेके लिये ही विक्रमार्जुनविजयका शुभ जन्म हुआ। अगर पंप अरिकेसरीके दरबारमे नहीं आता तो प्रायः विक्रमार्जुनविजयका जन्म ही नही होता। साथ ही साथ कर्णाटकवासी पंपके इस अमरकाव्यसे सदाके लिये वंचित रह जाते।

मै पहले ही लिख चुका हूं कि विक्रमार्जुनविजयके कथासंविधानमे कवितागुणार्णव पंपने कुछ परिवर्तन किया है। मगर यह परिवर्तन कोई भारी परिवर्तन नहीं है। जैसे पाचालीको पंचपत्नी नही मानना, कृष्णको प्राधान्य नहीं देना आदि। इसका हेतु जैनदृष्टि ही होनी चाहिये। कृष्ण महाबुद्धिशाली था अवश्य। फिर भी जैन दृष्टिसे वह पूज्य नही है। जैनधर्मके कथनानुसार वह अभी मुक्त नहीं हुआ है। हा, भविष्यमे होनेवाले २४ तीर्थंकरोमें वह अन्यतम है अवश्य। साथ ही साथ कृष्णको प्रधानता देनेसे नायक अर्जुनका प्राशस्त्य घट जाता।

महाकवि पंपको निम्न लिखित उपाधिया प्राप्त थी। (१) कवितागुणार्णव, (२) सुकविजनमनोमानसोत्तंसहंस, (३) संसारसारोदय तथा (४) सरस्वतीमणिहार। इसका काव्य सुकविजनश्लाघ्य होनेसे यह सुकविजनमनोमानसोत्तंसहंस, इसकी कविता समुद्रकी तरह नित्य, नूतन एवं गंभीर होनेसे कवितागुणार्णव,

इसने अपने काव्यमें संसारसारस्वरूप धर्मका वर्णन किया इसलिये संसारसारोदय, इसका वाग्विलास सरस्वतीके अलंकारप्राय होनेसे सरस्वतीमणिहार और आदिपुराणकी रचनासे पुराणकवि कहलाया। इन उपाधियोंमेंसे कवितागुणार्णव ही पंपको अधिक प्रिय थी। उपर्युक्तपाच उपाधियोंमेंसे 'कवितागुणार्णव' विक्रमार्जुनविजयमें एवं 'सुकविजनमनोमानसोत्तंसहंस' और 'संसारसारोदय' ये दोनों आदिपुराणमें प्रायः प्रत्येक आश्वासके अन्तमें प्रयुक्त हैं *।

स्व. बी. वेंकटनारायणप्प एम. ए. का कहना है कि आजतकके उपलब्ध कन्नड काव्योंमें भाषाशैली, वस्तुरचना, कथानिरूपण तथा वर्णनचातुर्यमे पंपके काव्य ही सर्वश्रेष्ठ हैं, इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है ×। हा, पंपने अपने आदिपुराणमें प्रौढ संस्कृत शब्दोंको प्रचुर परिमाणमे लिया है अवश्य। पर यह बात विक्रमार्जुनविजयमे नही पाई जाती है। इसमे सामान्यत व्यवहारमें आनेवाले ललित संस्कृत शद्ब ही लिये गये है। बल्कि इस विक्रमार्जुनविजयमे जहा-तहा अन्यान्य प्रकरणोंमे अनेक अपूर्व कन्नड शद्ब भी मिलते हैं। पंपके द्वारा अपने बहुमूल्य काव्योंमें प्रयुक्त संस्कृत शद्बोंको देखकर यह अनुमान करना कठिन नहीं है कि पंप संस्कृत

---

* आदिपुराणका 'पंपकविचारित' पृष्ठ ४-५

× 'विक्रमार्जुनविजय' का उपोद्घात पृष्ठ ३२.

भाषामें भी महापण्डित था। कविसार्वभौम पंपके काव्य सरल, ललित, मधुर ही नहीं हैं। बल्कि प्रौढ एवं गंभीर भी हैं। वस्तुतः इसके कवितासौंदर्यको पहिचाननेके लिये अपनेमें असामान्य काव्य-कलाकौशल चाहिये। पंपके काव्य सिर्फ पण्डितोंके लिये ही नहीं, सामान्यजनता भी इन काव्योसे यथेष्ट लाभ उठा सकती है। क्योंकि इसने अपने काव्योंमें प्राय· रोजके व्यवहारमें आनेवाले शद्वों, रूढिगत वाक्यों एवं भावोंको ही लिया है। एक बात और है कि अनुभवगम्य स्वाभाविक घटनाओंको सजीव चित्रित करना पंपके लिये बांए हाथका खेल था।

महाकवि पंपके प्रयोग वास्तवमें शद्वशास्त्रके लक्ष्य हैं। इसीलिये वैय्याकरणी नागवर्मा (ई. सन् ११४५) ने काव्यावलोकन तथा कर्णाटक भाषाभूषणमें, केशिराज (ई. सन् १२६०) ने शद्वमणिदर्पणमें और भट्टाकलंकदेव (ई. सन् १६०४) ने शद्वानुशासनमें पंपके प्रयोगोंको (लक्ष्य रूपमे) लिया है। यहापर और एक बातका उल्लेख कर देना आवश्यक है। वह यह है कि कविकुलगुरु पंपके द्वारा विक्रमार्जुनविजयमें जितने वृत्त प्रयुक्त हैं, उतने वृत्त अन्य किसी काव्यमें किसी भी कविके द्वारा नहीं प्रयुक्त हैं ×। पंपका वर्णन, अलंकार, रस और भावके संबधमें भी दो

× 'विक्रमार्जुनविजय' का उपोद्धात पृष्ठ ३५.

शद्व कह देना अप्रासंगिक नहीं होगा। खासकर सूर्योदय तथा सूर्यास्तका वर्णन, कुरुजांगण देश और उसकी राजधानीका वर्णन, हस्तिनापुरका वर्णन, बनवासिका वर्णन, वसंत ऋतुका वर्णन, तथा कुमारोदयका वर्णन ये सब गंभीर तथा चित्ताकर्षक हैं।। मुख्यतः पंपकी उपमाएं भी नवीन, स्वाभाविक तथा हृदयग्राही हैं।

पंपकी कृतियोंमें श्लेष, विरोधाभास आदि अर्थालंकार बहुत ही कम पाये जाते हैं। शद्वालंकारोंमें अनुप्रास तो सर्वत्र पाया जाता है। जहा-तहा यमक तथा मुक्तपदग्रस्त भी दृष्टिगत होते हैं। भावोद्रेकोत्पादक पदप्रयोगमे कविशिरोमणि पप अधिक प्रवीण है। इसके लिए निम्नलिखित प्रकरणोंका वर्णन विशेष दर्शनीय है—

१ द्रुपद तथा द्रोणका पूर्वस्नेहविचारसंबंधी संवाद। २. राजसूयागके निमित्त सुसपादित सभापूजाविचार। ३. वनवासके समय द्रौपदी एवं भीमको धर्मराजपर उत्पन्न आक्रोश। ४. किराता-र्जुनीय विचार। ५ दुर्योधनकी सभामें कृष्णका दूतकार्य। ६. कर्णके मरणोपरात दुर्योधनका प्रलाप। ७. कर्णके संबंधमें अश्वत्थाम तथा दुर्योधनके बीचका वाग्वाद। ८. और वैशंपायन सरोवरके समीप कौरवके अन्वेषणार्थ भीमके आगमनके बादका विचार *।

। ' विक्रमार्जुनविजय ' का उपोद्घात पृष्ठ ३७.

* ' विक्रमार्जुनविजय ' का उपोद्घात पृष्ठ ३८.

पपके श्रद्धेय गुरु देवेंद्र मुनि राजा-महाराजाओंके द्वारा सुसम्मानित एवं पूजित एक सुविख्यात विद्वान् थे। श्रवणबेल्गोलके नं. ४ के शासनमें इनके विशिष्ट गुणोंपर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है + ।

वास्तवमे पंप जैसे कविकुलगुरुके गुरु सामान्य विद्वान् कैसे हो सकते हैं ? कवितागुणार्णवके आश्रयदाता, चालुक्यवंशी सुप्रसिद्ध द्वितीय अरिकेसरी था। इस अरिकेसरीका पिता राजा नरसिंह तथा माता जाकव्वे थी। इसकी राजधानी पुलिगेरे थी। धारवाड जिलेका वर्तमान लक्ष्मेश्वर ही पूर्वका वह पुलिगेरे रहा। विक्रमार्जुनविजयके रचनाकालमें यहापर चालुक्योंको हरा कर राष्ट्रकूट नरेश राज्य करते थे। राष्ट्रकूट नरेशोंने भी कन्नड साहित्यके लिये पर्याप्त सहायता की थी। नृपतुंगका कविराजमार्ग नवमी शताब्दीकी उत्तम कृति है। पर राज्याधिकार राष्ट्रकूटोंके हाथमें दीर्घकाल तक नहीं रहा।

३२ वर्षोके बाद उसे चालुक्योंने फिर छीन लिया। इस बीचमे चालुक्य वंशकी कुछ शाखाओंने देशके भिन्न-भिन्न भागोंमे

+ अजनि महिपचूडारत्नराराजिताङ्घ्रिः ।
विजितमकरकेतूद्दण्डदोर्दण्डगर्वः ॥
कुनयनिकरभूध्रानीकदम्भोलिदण्ड. ।
स जयतु विबुधेन्द्रो भारतीभालपट्टः ॥

यथाशक्ति अपना अधिकार जमा लिया था। अपनी रचनामें महाकवि पंपके द्वारा निर्दिष्ट राजवंशावली पुलिगेरेमें शासन करनेवाली चालुक्य शाखा की ही है। इसकी पुष्टि शा. श. ८८१ (ई. सन् ९५९) में आचार्य सोमदेवके द्वारा रचित यशस्तिलकचंपूसे भी होती है =। यह एक महत्त्वपूण प्रौढ महाकाव्य है। इसके रचयिता आचार्य सोमदेव अनेक विषयोंके ज्ञाता एक महाविद्वान् थे। इनके द्वारा रचित ' नीतिवाक्यामृत ' नामक एक उल्लेखनीय राज नीति विषयक ग्रंथ भी है, जो कि ' माणिकचंद्र दिगंबर जैन ग्रंथमाला ' बंबईकी ओरसे प्रकाशित हो चुका है।

संस्कृत साहित्यमे आदिकवि वाल्मीकिको जो स्थान प्राप्त है, वही स्थान कन्नड साहित्यमें आदिकवि पंपको प्राप्त है। काव्यरचनाके लिये प्रतिभा ही उपादान कारण है। फिर भी इसके लिये व्युत्पत्ति और अभ्यास भी अत्यावश्यक है। इस अनिवार्य नियमानुसार महाकवि पंपने आचार्य जिनसेन जैसे जैन कवियोंके अतिरिक्त श्रीहर्ष, कालिदास, भारवि तथा बाण आदि सुप्रसिद्ध जैनेतर कवियोंकी कृतियोंका भी अध्ययन किया था। मैं पहले ही लिख चुका हूं कि पंप संस्कृतका भी अच्छा विद्वान् था। नमूनेके तौरपर नीचे कविके आदिपुराणसे एक संस्कृत स्तोत्र उध्दृत किया जाता है—

= यह महाकाव्य बंबईके ' निर्णयसागर प्रेस ' की ओरसे प्रकाशित है।

" कोट्यस्सप्त गृहाण्त्रिविष्टपगुरोर्लक्षाः पुनस्सप्ततिः ।
द्वाभ्यामभ्यधिका भवन्ति भवनावासेषु तेभ्यो नमः ॥
निस्संख्याः शिखरीन्द्रकन्दरसरिद्द्वीपादिषु व्यन्तर-
स्थानेषु प्रणमामि जैनवसतिं ज्योतिर्विमानेषु च ॥६३॥
द्वात्रिंशत्प्रथमे जिनेन्द्रनिलयाः कल्पे द्वितीये भवं- ।
त्यष्टाविंशतिरग्रतो निगदिते लक्षास्ततो द्वादश ॥
माहेन्द्राष्टशतद्वयोरपि दिवो लक्षाश्चतस्रः पृथक् ।
लक्षार्धं विलसन्ति च प्रथितयोरूर्ध्वं ततः कल्पयोः ॥६४॥
चत्वारिंशदशोत्तरे दशशतान्याभान्ति कल्पद्वये ।
तस्यानन्तरवर्तिनि[नोः] त्रिदशयोर्द्वन्द्वे सहस्राणि षट् ॥
सप्तघ्नं शतमानतप्रभृतिषु स्वर्गेषु तेष्वच्युते
प्रान्तेषु त्रिदशार्चिता जिनगृहास्तानञ्जसोपास्महे ॥६५॥
भान्त्येकादशभिश्शतं समधिकं प्राच्या तदग्रे शतम्
सप्ताग्रं चरमे सहैकनवति ग्रैवेयकाणां त्रिके ॥
विख्याता वसतिर्नवस्वनुदिशं शेषं च तत्संख्ययोः ।
पञ्चानूत्तरभागिनो जिनगृहाः पञ्चैव तानर्चये ॥६६॥
वंदे पञ्चसु मंदराद्रिषु वनातभ्राजिनः षोडश
प्रत्येकं जिनमंदिराणि दिविजैः सेव्याणि [नि] वंदारुभिः ॥
कुर्मश्चेतसि कुण्डलाद्रिरुचकक्षोणीध्रयोर्विश्रुतः
नृणां सीमनि मानुषोत्तरगिरौ चत्वारि चत्वारि च ॥६७॥

त्रिंशद्वर्षधराधरेषु विजयार्धोर्वीधराणा शते ।
सप्तत्यभ्यधिकं दशस्वपि कुरुक्षोणीरुहेषु स्थिताः ॥
इष्वागारचतुष्टये क्षितिभृता वक्षारनाम्ना शते ।
वंदे तत्परिसङ्ख्ययैव भुवनख्यातं जिनेंद्रालयम् ॥६८॥
चत्वारोऽञ्जनपर्वता दधिमुखक्षोणीधरा. षोडश ।
द्वात्रिंशद्धरणीभृतो रतिकरास्तेषां शिरश्शेखरान् ॥
द्वापञ्चाशतमर्हता मणिगृहा नंदीश्वराख्याष्टम- ।
द्वीपे पुण्यमहामहीन्द्रमहितानभ्यर्च्य वदामहे ॥६९॥
कल्पातीतसमेत कल्प कथितास्सर्वे त्रयोविंशति. ।
सप्तान्ता नवति सहस्रगुणिताशीतिश्चतुर्भिश्रिता ॥
लक्षाश्चैत्यगृहाश्चतुश्शतयुता पञ्चाशदष्टोत्तरा ।
ते नंदीश्वरकुण्डलाद्रिरुच कोष्वष्य त्रयोर्द्वीपयो· ॥७०॥
ज्योतिर्व्यन्तरचैत्यगेहरचिता द्विघ्नाश्चतुष्कोटयो ।
लक्षैस्सङ्घटिताश्च षट्सहितयो. पञ्चाशदर्हद्गृहाः ॥
साहस्राणि भवंति सप्तनवतिर्युक्ताश्चतुर्भिश्शतै· ।
एकाशीतिरकृत्रिमास्त्रिदिवगा ईशस्य वा गोचरा· ॥७१॥
भूपालेन्द्रमहामहैरहरहस्संपाद्यमानैर्नवैः ।
भ्राजंते जिनराजकृत्रिमगृहास्तेभ्यो नमस्कुर्महे ॥
अस्माकं ‘ कवितागुणार्णव ’ नुताः कुर्वन्तु चैत्यालया· ।
ते लोकत्रयतुङ्गमङ्गलमहा श्रीभाग्ययोग्यं पदम् ॥७२॥ ” *

---

* आदिपुराण आश्वास १६, पद्य ६३–७२.

पोन्न

[ई. सन् लगभग ९५०]

कन्नड कवि-रत्नत्रयोंमें महाकवि पोन्न अन्यतम है। पोन्न, पोन्निग, पुन्नमार्य आदि पोन्नके कई नाम थे। साथ ही साथ उभय-कविचक्रवर्ती, सौजन्यकंदाकुर, सर्वदेवकवींद्र और पार्श्वभकंठीरव आदि कई उपाधिया भी। महाकविके उभयकविचक्रवर्तीकी उपाधि इसकी मौलिक कवितासे प्रसन्न होकर राष्ट्रकूटवंशी कृष्णराज [ई. सन् ९५०] के द्वारा दी गई थी ×। इसका समर्थन कवि जन्न [ई. सन् १२०९] तथा दुर्गसिंह [ई. सन् ११४५] ने भी किया है। पोन्न संस्कृत तथा कन्नड दोनो भाषाओंका प्रौढ कवि था ।। इसीलिये कविकी उभयकविचक्रवर्ती उपाधि सार्थक है। कृष्णराजके द्वारा पोन्नको यह उपाधि इसी आशयसे दी गई थी। शातिनाथपुराणके प्रारंभिक एवं अंतिम पद्योसे सिद्ध होता है कि उभयकविचक्रवर्तीने दोनो भाषाओको यमल संतानकी तरह अनन्य भावसे रक्षा की थी। कविसंप्रदायानुसार अपने शातिनाथपुराणके प्रारभमें पूर्वकालीन तथा समकालीन अन्यान्य मान्य कवियोंको सादर स्मरण करता हुआ महाकवि पोन्नने कालिदास और असगका नाम विशेष रूपसे उल्लेख किया है। बल्कि कविने इनकी कविताओंसे अपनी कविताका श्रेष्ठ

× 'शांतिनाथपुराण' आश्वास १, पद्य ९.

। 'शातिनाथपुराण' आश्वास १२, पद्य ७२.

बतलाया है। यह केवल आत्मस्तुति नहीं हो सकती। इसमें कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं है कि उभयकविचक्रवर्ती पोन्नकी अमर कृतियां कन्नड साहित्यमें तो अमूल्य रत्न ही हैं।

कवि काव्य दो दृष्टियोंसे लिखते हैं। किसीकी दृष्टि रहती है कि अपना काव्य विद्वद्रंजक होना चाहिये। पर और किसीकी दृष्टि यह रहती है कि विद्वद्रंजक हो ही, साथ ही पामररंजक भी हो। देखिये, यहांपर एक की दृष्टि संकुचित और दूसरेकी व्यापक है। इतना ही नहीं, पण्डित एवं पामर दोनोंके अनुकूल काव्य लिखना आसान काम नहीं है। यह अन्यादृश शक्ति सभी कवियोंमें नहीं होती है। पर अधिकांश जैन कवि दूसरे ही पक्षके अनुयायी हुए हैं। इसमें एक रहस्य भी है। प्रारंभसे ही जैन कवियोंका लक्ष्य साहित्य सेवाके साथ साथ धर्मप्रचार भी एक था। अपने काव्योंको कठि बनानेसे उनके इस कार्यकी पूर्ति नहीं हो सकती थी। इस बातको वे भले प्रकार जानते थे। इसीलिये संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड और तमिल आदि किसी भी भाषाके कवि हों वे अपने लक्ष्यसे विचलित नहीं हुए हैं। हां, खासकर काव्य, पुराण, आदि कुछ ग्रंथोंमे इसका अपवाद अवश्य मिलेगा। यहांपर कवियोंका ध्येय इतना ही रहा होगा कि जैनेतर काव्योंके समक्ष अपना काव्य फीका न पडने पावे। अपेक्षावादकी दृष्टिसे यह है भी ठीक।

अस्तु, महाकवि पोन्न भी पंडितपामररंजक कवियोंमेंसे है। कवि जन्नके मतसे महाकवि पोन्न असहाय कवि था +। अर्थात् काव्यरचनामें महाकविको किसी भी अन्य कवि या विद्वानकी सहायताकी आवश्यकता नहीं थी। एक बात और है कि महाकवि पंप, जन्न आदिके समान पोन्न अपना शरीर, वर्ण वेष आदिके संबन्धमें कुछ भी नहीं लिखता। हा, इसने अपनेको 'सवण' अवश्य लिखा है। वह भी दीर्घकेशी ×। पोन्नकी कृतियोंको देखनेसे पता चलता है कि इसकी अपनी ही एक शैली थी। साथ ही साथ कविता प्रवाहशील, गभीरभावको ली हुई है। कविचक्रवर्तिने शांति-पुराणमे अपने इस ग्रंथकी बडी प्रशंसा की है। यह कोई नई बात नहीं है। प्राय. प्रत्येक कवि इस प्रकार आम तौरसे अपनी कृतियों की प्रशंसा किया करते हैं।

पोन्नकी कृतिया चार हैं। (१) शांतिपुराण, (२) भुवनैक-रामाभ्युदय, (३) गतप्रत्यागतवाद और (४) जिनाक्षरमाला। इनमें शांतिपुराण तथा जिनाक्षरमाला ये दो कृतिया प्रकाशित हो चुकी हैं। शेष दो रचनाएं अभीतक उपलब्ध नहीं हुई हैं। 'गतप्रत्या-गतवाद' न्यायविषयक संस्कृत ग्रंथ होना चाहिये। 'भुवनैकरामा-भ्युदय' केशिराजके कालतक वर्तमान था। क्योंकि इसने अपने

+ 'अनन्तनाथपुराण', आश्वास १४, पद्य ७७.

× 'शांतिपुराण', आश्वास १, पद्य १०

'शब्दमणिदर्पण'में उक्त भुवनैकरामाभ्युदयसे दो एक पद्योंको उध्दृत किया है। यह १४ आश्वासोंका एक महाकाव्य होना चाहिये *। महाकविने पूर्वोक्त शान्तिपुराणमें इसकी भी तारीफ की है। हां, गतप्रत्यागतवादका तो पता ही नहीं लगता।

कविचक्रवर्तीकी उपलब्ध दो कृतियोंमें शांतिपुराण अपर नाम पुराणचूडामणि' ही उल्लेखनीय कृति है। अतः इसपर थोडासा, प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। हां. इसके लिये सबसे पहले विज्ञ पाठक इसकी उत्पत्तिका इतिहास ही सुन लें। वेंगि विषयांतर्गत कम्मेनाडुमें पुंगनूरु नामक ग्राम था। वहांपर कौंडिन्य गोत्रोद्भव नागमय्य नामक जैन ब्राम्हण रहता था। इसे मल्लप और पुन्नमय्य नामके दो पुत्र थे। अपने गुरु जिनचंद्र देवके प्रति परोक्ष विनय प्रकट करनेके लिये इन्होंने सबके समक्ष महाकवि पोन्नसे पुराणचूडामणि या शांतिपुराणकी रचना कराई। पोन्नका कहना है कि इन दोनोंमेंसे मल्लप मातृभक्त तथा पुन्नमय्य पितृभक्त था ।। उक्त ये दोनों भाई बलदेव-वासुदेव, राम-लक्ष्मण एवं भीम-अर्जुनकी तरह बडे प्रेमसे रहते थे।

आश्चर्यकी बात है कि पोन्न अपने पुराणचूडामणिमें मल्लपके वंशके संबंधमें कुछ भी नहीं लिखता है। पता नहीं लगता है कि

---

* 'शांतिपुराण', आश्वास १२, पद्य ६६.

। 'शांतिपुराण', आश्वास १२, पद्य ६१-६२.

महाकविके इस मौनका कारण क्या था। हां, रनके अजितनाथ पुराणमें इन मल्लप तथा पुन्नमय्यके वंशका परिचय निम्न प्रकार अवश्य मिलता है—

'तैलपदेव [ई. सन् ९७३-९९७] के मल्लप और पुन्नमय्य नामके दो सेनापति थे। इनमेंसे पुन्नमय्य तो अपने शत्रु गोविंदके साथ लडकर कावेरी नदीके तटपर मारा गया। मल्लप तैलपदेवके मरनेके बाद आहवमल्ल [ई. सन् ९९७-१००८] के राजा होनेपर उसका मुख्याधिकारी हुआ। इसको गुडमय्य, एलमय्य, पुन्नमय्य और आहवमल्ल नामके चार पुत्र एवं अत्तिमब्बे, गुंडमब्बे और नागिमब्बे नामकी तीन पुत्रिया थीं। पुत्रियोंमेंसे अत्तिमब्बे और गुंडमब्बेका विवाह चालुक्यचक्रवर्तीके महामंत्री दल्लपके पुत्र नागदेवके साथ हुआ। नागदेव बाल्यकालसे ही बडा साहसी और पराक्रमी था =। इसलिये चालुक्य नरेश आहवमल्लने प्रसन्न हो कर इसे अपना प्रधान सेनापति बनाया। यह अनेक युद्धोमें प्रबल पराक्रम दिखलाकर विजयी हुआ और अतको मारा गया। इसकी छोटी स्त्री [अत्तिमब्बेकी छोटी बहन] गुडमब्बे तो इसीके साथ सती हो गई! परन्तु अत्तिमब्बे पुत्र अन्नगदेवकी रक्षा करती हुई व्रतनिष्ठा होकर रहने लगी। जैन धर्मपर इसको अगाध श्रद्धा थी। इसने सुवर्णमय तथा रत्न-जटित एक हजार पाच सौ जिन प्रतिमाये

= इसे 'ओरटर मल्ल' नामक एक अन्वर्थ उपाधि भी थी।

बनवाकर स्थापित की और लाखों रुपयोंका दान किया। दानमें यह इतनी प्रसिद्ध हुई कि लोग इसे ' दानचिंतामणि ' कहने लगे। इसी दानचिंतामणिके सादर आग्रहसे महाकवि रन्नने 'अजितपुराण' की रचना की।

अत्तिमब्बेके कालमें ही पोन्नके पूर्वोक्त शांतिपुराणकी ख्याति काफी फैल गई थी। परन्तु उस समय इसकी प्रतियां नहीं मिल रही थीं। दानचिंतामणिको यह अभाव खटका। इसने अपने पिता मल्लपके प्रति परोक्ष विनय प्रकट करनेके लिये पुराणचूडामणिकी एक हजार प्रतियां लिखवाकर शास्त्रदान किया। स्त्रीरत्न अत्तिमब्बेका यह कार्य वस्तुत प्रशंसनीय ही नहीं, सर्वथा अनुकरणीय है।

कविचक्रवर्तीने अपनी गुरुपरंपरामें निम्न लिखित व्यक्तियोंका नाम सादर स्मरण किया है।—

(१) काणूरुगणीय अर्हनंदी (२) पुरिमंडल (३) वीरनंदी (४) दामनन्दी (५) चन्दिनन्दी और (६) जिनचन्द्र ०। यह जिनचन्द्र कवि, वादी, वाग्मी एवं गमकियोंके आधार, शिबि, कर्ण, रघु आदि पूर्व पुरुषोंके गुणोंके धारक, नूतन धर्मराज; त्यागी, नवीन समंतभद्र, पूज्यपाद और अकलंक स्वामी कहे गये हैं *।

---

० 'शान्तिपुराण', आश्वास १, पद्य १७-२५.

* 'शान्तिपुराण', आश्वास १, पद्य २६-२७.

इस वर्णनसे मुनि जिनचन्द्र एक विख्यात विद्वान् ज्ञात होते हैं। महाकवि पोन्न अपना शान्तिपुराण अपराजित भवसे ही प्रारंभ करता है। कथाभागमें पोन्नके शान्तिपुराण एवं श्रीपुराणके आधार-पर रचे गये कमलभवके शान्तीश्वरपुराण इनमें जहा तहा अन्तर है =। यों तो पोन्न मितभाषी है। फिर भी कर्म-स्वरूप, ध्यान आदि कुछ गहन विषयोंको इसने विस्तारसे ही वर्णन किया है। बल्कि काव्यधर्मके अनुकूल शातिपुराणमें स्वयंवर, वसंतकाल, जलक्रीडा, युद्ध, चंद्रिकाविहरण आदि भी सविशद प्रतिपादित हैं। पोन्नके शातिपुराणमें शातिनाथ तीर्थंकरकी गर्भ, जन्म, तथा दीक्षा-तिथि इस प्रकार दी गई है—

गर्भ—फाल्गुन शु. पंचमी, जन्म—कार्तिक शु. चतुर्दशी और दीक्षा—ज्येष्ठ शु. चतुर्दशी। पर कमलभवके शांतीश्वरपुराण आदिमें उक्त तिथिया इनसे भिन्न मिलती हैं।

पोन्न पूर्वोक्त शातिपुराणमें सिर्फ निम्नलिखित १० विद्याओंका उल्लेख करता है—

(१) रूपपरावर्तन (२) गगनगामिनी (३) महाबल (४) हेति-विदारिणी (५) पर्णलघु (६) बहुरूपिणी (७) घोषणविद्या (८) बंध-विमोचनी (९) अवलोकिनी और (१०) बला। पुराणचूडामणिमें यों तो वृत्तोंकी जातिया अधिक हैं। हा, इनमें कंदोंके बाद चंपक-

---

= ' पोन्नकृत ' शातिपुराण ' की प्रस्तावना, ७-९

मालाकी संख्या अत्यधिक है । । प्राय: शांतरसके लिये औरोंकी अपेक्षा चंपकमाला वृत्त ही अधिक समुचित समझा गया हो । कविचक्रवर्तीकी भाषा परिमार्जित और शैली प्रौढ है । केशिराजने अपने शद्बमणिदर्पणके सूत्रोंके लक्ष्य मानकर इसके कई पद्योंको उध्दृत किया है । व्याकरणकी दृष्टिसे भी महाकवि पोन्नकी भाषा निर्दुष्ट है । इसमें कहीं भी शिथिल तथा संशयास्पद प्रयोगोंके दर्शन ही नहीं होते । पोन्नने संस्कृत भाषाके सिवा अन्य भाषाओंसे शद्ब बहुत ही कम लिया है । केशिराजके धातुपाठमे नहीं पाई जाने-वाली कई क्रियाएं पोन्नके शांतिपुराणमें मिलती हैं ×।

रन्न [ई. सन् ९४९], नागचंद्र [ई. सन् ११०५], नयसेन [ई. सन् १११२], कर्णपार्य [ई. सन ११४०], नागवर्मा [ई. सन् ११४५], दुर्गसिंह [ई सन ११४५], नेमिचंद्र [ई. सन् ११७०] रुद्रभट्ट [ई सन् ११८०], अग्गल [ई. सन् ११८९], आचण्ण [ई. सन ११९०], देवकवि [ई. सन् १२००], पार्श्वपडित [ई. सन् १२०५] जन्न [ई. सन् १२०९], गुणवर्मा [ई. सन १२३५], कवलभव [ई. सन् १२३५], अंडय्य [ई. सन १२३५], मल्लिकार्जुन [ई. सन् १२४५], केशिराज [ई. सन् १२६०], चौडरस

। 'शांतिपुराण' की प्रस्तावना पृष्ठ १४.

× 'शांतिपुराण' की प्रस्तावना पृष्ठ १७.

[ई. सन् १३००], नागराज [ई. सन् १३३१] + आदि जैन जैनेतर मान्य कवियोंने अपनी अपनी कृतियोंमें सादर स्मरण पूर्वक कविचक्रवर्ती पोन्नकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की है। निस्संदेह पोन्न महाकवि है। मृदुबंध सहित, युक्तियुक्त, गंभीर, प्रवाहरूप, सुंदर तथा सुश्राव्य, लोकोक्तिमिश्रित, निसर्गशैली है कविचक्रवर्ती पोन्नकी। यह राष्ट्रकूट-वंशीय राजा कृष्णराजके समय (ई.सन्९५०) मे हुआ था।

उभयभाषाकविचक्रवर्ती महाकवि पोन्नके संस्कृत पाडित्यका नमूना देखिये—

परमश्रीस्नेहगेहायितपदकमलं चेतनाचेतनाग।
स्फुरितार्घौघच्छिदं भासुरसुरनरसद्भव्यसेव्यं वचोवि-॥
स्तरतृतिव्याप्तलोकत्रितयनपगताशेषदोषालिमुक्ति-।
स्थिरसौख्याम्भस्स्वयम्भूरमणजलधि रक्षिक्के शातीशनेम्मं॥ *
प्रकटश्रीहिमवारवाणविशदं गंगाशुकन्यस्तम-।
स्तकनप्रस्थनमेरुशेखरनुपात्तोदात्तविस्तारकी-॥
चक्रवेत्रं भरतावनीपतिमहीश्रीरक्षकं वृद्धकं-।
चुकिमर्यादेयोलिर्देनेंदु महिपं हैमाद्रियं नोडिदं ॥६०॥ ऽ

+ ' शांतिपुराण ' की प्रस्तावना पृष्ठ १८-२१.

* ' शांतिपुराण ' आश्वास १.

ऽ ' शांतिपुराण ' आश्वास ११.

स्वस्ति समस्तमंडलिकमस्तकपुष्परजःपिशंगितां-।
घ्रिस्तबकद्वयं विनतपापहरं शशिशशसद्विहा-॥
यस्तपनं निधीश्वरनखंडितमंडलनाथनद्विवि-।
न्यस्तनिजप्रशस्ति कृतशांतिमहीपति सिद्धदिग्जय॥६४॥ ।

रन्न

[ई. सन् ९९३]

यह दशवीं शताब्दीकी बात है। बेलुगे नाडुमें बेलुगलि देशमें मुदुवोललु नामक एक सुंदर ग्राम था। वह बेलुगलि घटप्रभा-कृष्णा नदियोंके प्रवाह-क्षेत्रमें तद्वाडिसे दक्षिण तथा तोरगलेसे उत्तरमें अवस्थित था ०। अर्थात् उक्त वह देश वर्तमान बिजापुरका कुछ भाग, मुधोल् और जंबुखंडिके संपूर्ण प्रांतोंको लेकर बेलगांव जिलेके उत्तर भागतक फैला हुआ था। वहांपर चूडियोंका व्यवसायी जिनवल्लभ नामक एक जैन वैश्य रहता था। उसके धर्मपत्नीका नाम अब्बलब्बे था। उसे अपने पूज्य पतिपर असीम भक्ति थी *। जिनभक्त, वैश्य जिनवल्लभ विशेष संपन्न तो नहीं था। फिर भी अपनी न्यायोपार्जित सामान्य हैसियतसे ही वह संतुष्ट था। जिनवल्लभको प्रथममें दृढबाहु, रेचण, मारमय्य नामक तीन पुत्र

। 'शांतिपुराण' आश्वास ११.

० 'अजितपुराण' आश्वास १२, पद्य ४३-४५

* 'अजितपुराण' आश्वास १२, पद्य ४६.

पैदा हुए। इनके संबंधमें नामोल्लेखके अतिरिक्त विशेष बातोंका कुछ भी पता नहीं लगता। बाद उक्त जिनवल्लभके घरमें कर्णाटक-वासियोंके प्रबल पुण्योदयसे ई. सन् ९४९ में, सौम्य संवत्सरमें = मुदुवोलल्लु ग्राममें ही × महाकवि रन्नका शुभ जन्म हुआ। मुदुवोलल्लु वर्तमान मुधोल संस्थान (राज्य) की राजधानी मुधोल है। यह जंबुखंडिकी दक्षिणमें घटप्रभा नदीके तटपर उपस्थित है। यहासे जंबुखंडि सिर्फ बारह मीलकी दूरीपर है।

रन्न बाल्यकालमें ही विशेष उत्साही एवं तेजस्वी था। इसके गोल गोल सुंदर मुखसे अनायास निकलनेवाली स्फुट और मीठी बातोंको सुनकर पडोसकी स्त्रिया इसको बहुत प्यार करती थी। स्वभावतः निर्विकार छोटे–छोटे बच्चोंको देखकर आम तौरसे सबको आनंद होता है। रन्नकी तो बात ही दूसरी है। यह निकट भविष्यमें ही एक महाकवि होनेवाला था। ऐसे होनहार बालकको देखकर पडोसियोंको प्रेम होना सर्वथा स्वाभाविक है। महाकवि रन्नने अपने ' गदायुद्ध ' में स्वयं लिखा है कि पडोसकी स्त्रिया प्यारसे खेलनेके अतिरिक्त खूब खिलाती भी थी *। जिनवल्लभके घरपर आनेवाले सुशिक्षित गुरुजन भी बालक रन्नकी स्फूर्ति, ग्रहणशक्ति,

---

= ' अजितपुराण ' आश्वास १२, पद्य ४७.

× ' अजितपुराण ' आश्वास १२, पद्य ४५.

* ' गदायुद्ध, ' आश्वास १, पद्य ४६.

वाक्पटुता आदि विशिष्ट गुणोंसे प्रसन्न हो, इसे पद्य, गीत, आदि कंठ कराकर क्षणभरमें ही कंठकर सुनानेकी इसकी अलौकिक शक्तिको देखकर बहुत ही आनंदित होते थे। इस प्रकार बाल्यावस्थासे ही रत्न सरस्वतीका कृपापात्र बन गया था। यह अपने बहुमूल्य समयको व्यर्थ न खोकर ज्ञानार्जनरूप शुभ कार्यमें ही बिताता रहा।

रत्न दृढकाय था। इसलिये यह किसी भी कठिनसे कठिन कार्यसे अपना मुख नहीं मोडता था। धैर्यसे आगे बढकर अपने कार्यको साध लेना ही इसका मुख्य लक्ष्य रहता था। रत्नका शैशव काल बीत गया, यह बडा हुआ। अब इसके विद्याध्ययनकी रुचि और बढ गई। पर आजकलके समान उस जमानेमें बडी-बडी पाठशालाए, अनेक उपाधिधारी बडे-बडे नामी अध्यापक और इच्छित उत्तमोत्तम पाठ्यग्रंथ सर्वत्र सुलभ नहीं थे। स्वानुकूल दूरवर्ती देशोंमें जाकर पढनेके लिये आजकलकी तरह रेलवे आदि शीघ्रगामी सवारियोंकी व्यवस्था भी नहीं थी। कहनेका तात्पर्य यह है कि वर्तमान समयमें विद्याध्ययनके लिये जितना सौकर्य प्राप्त है वह रत्नके कालमें नहीं था। साथ ही साथ उस जमानेके शासकोंको सदैव अपने राज्यविस्तारकी ही चिंता लगी रहती थी। फलस्वरूप जहा-तहा बराबर लडाइया चलती रहनेसे देशमें सर्वत्र अशांति ही अशांति घर कर गई थी। अपने विद्याध्ययनकी इन असुविधाओंको देखकर रत्न बहुत ही चिंतित हुआ। फिर भी यह हताश न होकर

इसके लिये समुचित मार्ग ढूंढ रहा था। अंतमें रन्नने यही निश्चय किया कि विद्याध्ययनार्थ मेरे लिये जन्म-भूमिका परित्याग अनिवार्य है।

इस शुभ संकल्पानुसार महाकवि रन्न एक रोज मुदुवोल्लुको त्यागकर गंगराज्यकी ओर चल पडा। पूर्वपुण्यसे इसका प्रयाण अनुकूल ही हुआ। वहापर गंगराजाके मंत्री चावुंडराय रन्नके मुखकी तेजी, चाकचक्य तथा प्रबल विद्यारुचि आदि बातोंसे संतुष्ट हुआ और इसे अपने ही पास रखकर इसकी सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति स्वयं करता रहा। । बुद्धिशाली तथा विवेकी रन्नने अनायास प्राप्त इस विपुल सौकर्यको सार्थक बनानेके नियतसे पोषक चावुंडरायकी ही सहायतासे सुयोग्य गुरुओंके आश्रयमें प्राकृत, संस्कृत तथा कन्नड आदि भाषाओंका गहरा अध्ययन किया। काव्य, नाटक आदिके अध्ययनके उपरात जैनेंद्र एवं पाणिनि इन दोनों महत्त्वपूर्ण प्राचीन संस्कृत व्याकरणोंको भले प्रकार अभ्यास करके यह एक नामी वैयाकरणी हुआ +। इसने बाद रामायण, महाभारत आदिके अतिरिक्त कालिदास, बाण आदि सुप्रसिद्ध संस्कृत कवियोंके पद्य तथा गद्य ग्रंथोंका भी अध्ययन किया ×। कन्नडमें तो रन्नको महाकवि पंप और पोन्नके ग्रंथ ही मार्गदर्शक थे। इन सबोंके अध्ययनके

। 'अजितपुराण,' आश्वास १२, पद्य ४८ तथा 'गदायुद्ध,' आश्वास १, पद्य ३४.

+ जन्नका 'अनंतनाथपुराण,' आश्वास १४, पद्य ७७.

× 'गदायुद्ध,' आश्वास १, पद्य ८–९.

बाद जैनदर्शनके गूढ अध्ययनके लिये इसने गंगनरेश एवं चावुंड-रायके अनन्य श्रद्धेय गुरु, अनेक विषयोंके तत्वस्पर्शी महाविद्वान् आचार्य अजितसेनके निकट रहकर जैनधर्मको अच्छी तरह जान लिया * ।

इस प्रकार रन्न लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारकी विद्याओंमें पूर्ण पंडित हुआ । इसके बाद अनन्य हितैषी एवं पोषक, मंत्री चावुंडरायके प्रयत्नके फलस्वरूप अनेक आश्रित एवं प्रधान राजाओंके आस्थानोंमें पहुंचकर, वहांकी विद्वन्मंडलीमें अपना सिक्का जमाकर, रन्न अल्पकालमें ही समूचे कर्णाटकमें विख्यात हुआ = । कुछ समयतक कर्णाटकके भिन्न भिन्न राज-दरबारोंमें रहा एवं सम्मान पाकर अनेक सुविख्यात जैनतीर्थोंकी वंदना करता हुआ यह अपनी जन्मभूमिको लौट आया ।

इस बीचमें कर्णाटकके राज्याधिकारोंमें अनेक परिवर्तन हो गये थे । पश्चिम चालुक्योंने राष्ट्रकूट नरेशोंको जीतकर अपने राज्यको समुन्नत बना लिया था । आहवमल्ल तैलप [ई. सन् ९७३-९९७] ने राष्ट्रकूट राजा कक्कको युद्धमें जीतकर उसकी पुत्री जाकब्बेसे विवाह कर लिया था ।

---

* ' अजितपुराण, ' आश्वास १२, पद्य ४८.

= ' गदायुद्ध, ' आश्वास १, पद्य ३१, ४० और ४१ तथा ' अजितपुराण, ' आश्वास १, पद्य ८१ और ८५.

राष्ट्रकूटके राजा इंद्रको राज्यस्थापनामें सहायता करनेका वचन देनेवाले, नोलंबकुलांतकके नामसे विख्यात गंगराजा मारसिंहको प्रयत्न करनेपर भी जब इस कार्यमें सफलता नहीं मिली तब विरक्त हो वह वर्तमान धारवाड जिलांतर्गत बंकापुरमें जाकर आचार्य अजितसेनके पादमूलमे सल्लेखनाव्रत धारण करके ई. सन् ९७४ में स्वर्गासीन हुआ। इधर इन्द्र राजाने भी श्रवणबेलगोळ जाकर पूर्वोक्त सल्लेखनाव्रतके द्वारा ही अपना शरीरत्याग कर लिया। =

राष्ट्रकूट तथा चालुक्य नरेश जब राज्यके लिये इस प्रकार आपसमें लड रहे थे, तब शब्बे निवासी चालुक्य पंचानन पंचल देवने राज्यस्थापनाके लिये यही समुचित समय समझकर तैलपपर चढाई कर दी। पर तैलपके वीर सेनापति नागदेवने पंचलदेवको इस युद्धमें मार डाला। उक्त नागदेवका पुत्र ही सेनानायक अण्णिगदेव है। + ऊपर मैं कह चुका हूं कि रन्न विद्याध्ययनको समाप्त करके अपना घर लौट आया। इस समय राष्ट्रकूट नरेशों द्वारा पराजित गंगराजाओंकी शक्ति कुंठित हो जानेसे जैनधर्म आश्रयहीन हो गया था। फिर भी नागदेव आदि बहुतसे जैन तैलपके यहा ऊंचे-ऊंचे अधिकारोंमें आरूढ रहें। यद्यपि चालुक्य राजा तैलप

= 'रन्नकविप्रशस्ति,' पृष्ठ ४-५.

+ 'अजितपुराण,' आश्वास १, पद्य ४१ और ४४ तथा आश्वास १२, पद्य १९ और २३.

शैव था। फिर भी अपने राजकार्यको सुसूत्र चलानेके उद्देशसे तैलप शैवेतर धर्मावलंबियोंको भी अपने यहां सहर्ष स्थान देता था।

रन्न स्वदेशमें आकर तैलपके यहाके स्वमतीय अधिकारियोंका * आश्रय पाकर उनके द्वारा तैलपके आस्थानमें आस्थान-विद्वान् नियत हुआ। पर यह पता नहीं लगता है कि तबतक रन्नका विवाह हुआ था कि नहीं। हां, इतना पता तो अवश्य लगता है कि इसे दीर्घकालतक संतान नहीं हुई थी। इस बीचमें सत्याश्रयने × श्रद्धेय पिता तैलपकी आज्ञासे जैत्रयात्राके लिये प्रस्थान कर, चोल-राजा अपरादितको जीतकर काचिनगरको जलाकर घूर्जरोंको परास्त करके अपने अदम्य साहसको प्रकट किया ऽ। प्रत्यक्षदर्शी महाकवि रन्नको सत्याश्रयके इस असीम साहसको व्यक्त करनेकी तीव्र अभिलाषा पैदा हुई होगी। फलतः रन्नने यथाशीघ्र 'साहसभीम-विजय' अथवा 'गदायुद्ध' नामक एक अमर महाकाव्यकी रचना कर डाली। ०

---

* उस समय पोन्न, नागमय्य आदि जैनधर्मानुयायी कई व्यक्ति तैलपके यहा उच्च राज्याधिकारी मौजूद थे। रन्नने अपने 'अजितपुराण' [प्रथम आश्वास] में इन्हें स्वपोषक बतलाया भी है।

× सत्याश्रयका शासनकाल ई. सन् ९९७-१००८.

ऽ 'गदायुद्ध,' आश्वास १ पद्य २३ और २८ तथा आश्वास २, पद्य ७ के बादका गद्य.

० 'गदायुद्ध,' आश्वास १, पद्य ३२.

महाकविने इस ग्रंथको अपनी ३४ वर्षकी अवस्थामें चित्रभानु संवत्सरमे रचा था + । चालुक्यचक्रवर्ती आहवमल्ल तैलपने इस ग्रंथको आमूलाग्र सुनकर कविको सहर्ष कविचक्रवर्ती इस उपाधिके साथ-साथ पालकी, हाथी, छत्र, चमर आदि राजसम्मानसूचक अनेक बहुमूल्य चीजोंको प्रदान किया था :: । गदायुद्धके निर्माणके ११ वर्षोंके बाद कविचक्रवर्तीने पूर्वोक्त अण्णिगदेवकी माता दान-चिंतामणि अत्तिमब्बेकी प्रेरणासे * विजय संवत्सरमें, द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथकी पवित्र जीवनीको 'अजिततीर्थंकरपुराणतिलक' के नामसे रचा । यह ग्रंथ चंपूमें है । कवि रन्न इस ग्रंथके द्वारा जैन-धर्म संबंधी अपने अगाध ज्ञानको व्यक्त करके समाजमें पुराण-कवियोंकी श्रेणिमें सम्मानित हुआ । ×

पहली स्त्रीसे दीर्घकालतक संतान न होनेसे रन्नको दूसरा विवाह करना पडा । इसकी पत्नियोंमेंसे एकका नाम शांति और दूसरीका जक्कि था । । पतिभक्ता ये दोनो महाकविके बहुत ही

+ 'गदायुद्ध,' आश्वास १०, पद्य २३.

:: 'अजितपुराण,' आश्वास १, पद्य ८६ और आश्वास १२ पद्य ४९ तथा गदायुद्ध आश्वास १, पद्य ३७.

* 'अजितपुराण,' आश्वास १, पद्य ७७,७८ और ८०.

× 'अजितपुराण,' आश्वास १२, पद्य ३५-३८.

+ 'अजितपुराण,' आश्वास १२, पद्य ५०.

अनुकूल रही। ४१ वर्षकी अवस्थामें विरोधि संवत्सरमें, रन्नको एक पुत्र पैदा हुआ *। रनपोषक मंत्री चावुंडरायपरकी गौरवबुद्धिसे महाकविने नवजात उस बालकका नाम 'राय' रखा। तीन वर्षके बाद विजय संवत्सरमें अपनी ४५ वर्षकी अवस्थामें कविचक्रवर्तीको एक पुत्री भी पैदा हुई ०। महाकविने अपनेको महदुपकार करनेवाली स्त्रीरत्न, दानचिंतामणि अत्तिमब्बेकी स्मृतिमें इस पुत्रीका नाम 'अत्तिमब्बे' ही रखा। रन्नको इन दोनों संतानपर गाढ प्रेम था। फलस्वरूप कविने इन दोनोंके नामपर दो श्रेष्ठ काव्योंकी रचना की। इनमेंसे एकका नाम 'परशुरामचरित' और दूसरेका 'चक्रेश्वरचरित' रखा गया। =

श्रीमान् रामानुजैय्यंगारकी रायसे स्वानुकूल दो पत्नियों एवं विनीत दो संतानोंसे सुखी, उच्च अधिकारियों, विशिष्ट पण्डितों तथा कवियोंके द्वारा गौरवप्राप्त, चक्रवर्ती तैलपसे कविचक्रवर्तीकी उन्नत उपाधिके साथ साथ अधिक सम्मानित और कन्नडवाग्देवीका भूषणस्वरूप यह रन्न लगभग ई. सन् १०२० में स्वर्गासीन हुआ होगा। ऽ

---

* 'अजितपुराण,' आश्वास १२, पद्य ५१.

० 'अजितपुराण,' आश्वास १२, पद्य ५२.

= 'अजितपुराण,' आश्वास १२, पद्य ५३.

ऽ 'रन्नकविप्रशस्ति,' पृष्ठ ७-८.

महाकवि रन्न कन्नड और संस्कृत दोनों भाषाओंका प्रौढ़ कवि था। इस इसने बातको अपने गदायुद्ध तथा अजितपुराणमें स्वयं प्रकट किया भी है। किन्तु अभीतक रन्नका कोई भी संस्कृत ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ है। रन्नके कन्नड ग्रन्थोंमें यद्यपि चारोंके नाम प्राप्त हुए हैं अवश्य। फिर भी इस समय इन चारों-मेंसे सिर्फ दो ही मिले हैं। ये दो गदायुद्ध और अजितपुराण अथवा अजिततीर्थंकरपुराणतिलक है। शेष दो परशुराम-चरित और चक्रेश्वरचरितका अभीतक पता ही नहीं लगा है। रन्नने महाकवि पपका आदिपुराण, पोन्नका शान्तिपुराण और अपना अजितपुराण इन तीनोंको समूचे पुराण-साहित्यमें सर्वश्रेष्ठ बतलाया है। बादके महाकवियोंने भी कविचक्रवर्तीकी इस बातको एक-कंठसे समर्थन किया है। महाकवि रन्नका यह भी कहना है कि आदिपुराणको रचकर जिस प्रकार महाकवि पंपने ब्राम्हण जातिका मुख उज्ज्वल किया है,उसी प्रकार अजितपुराणको रचकर मैंने वैश्य वंशका मुख उज्ज्वल किया। जबतक परशुरामचरित तथा चक्रेश्वरचरित उपलब्ध नहीं होते हैं तबतक इन ग्रन्थोंके नायक, प्रतिपादित विषय आदिके सम्बन्धमें ऊहापोह करना विशेष लाभ-कारी नहीं होगा। बल्कि एम. ए. दोरेस्वामय्यंगारके मतसे चावुं-डराय, सत्याश्रय तथा अत्तिमब्बे ये तीनों क्रमशः रन्नके आश्रयदाता हैं। इन तीनोंके नामसे कविने अपने तीन ग्रन्थोंकी रचना की होगी। चावुन्डरायकी उपाधियोंमें ' समरपरशुराम ' भी एक है। रन्नने संभवतः अपना परशुरामचरित्र इन्हींके नामसे रचा होगा। चक्रे-

श्वरचरित्र प्राय: गदायुद्धका ही अपर नाम है । क्योंकि कविने सत्याश्रयको अनेकत्र चक्रेश्वरके नामसे ही उल्लेख किया है । बल्कि इसने ग्रंथांतमें ' कातिगेश्वर चक्रवर्तीसाहसभीमं ' यों स्पष्ट कहा भी है । तीसरा अजितपुराण अत्तिमब्बेके दानचिंतामणि अत्तिमब्बेके नामसे रचा गया था । इस प्रकरणमें अय्यंगारजीका यह भी कहना है कि परशुरामचरित्र संस्कृत भाषामें भी हो सकता है । क्योंकि रन्नने अजितपुराणमें अपनेको स्पष्ट उभयकवि बतलाया है । साथ ही साथ आप गदायुद्धका रचनाकाल १००८ और अजितपुराणका १०२८ अनुमान करते हैं । ।

महाकविके काव्य, रस, भाव, गुण और लक्षण इन सबोंकी दृष्टिसे श्लाघनीय हैं । स्वभावमधुर शब्दप्रयोग और विजातीय रसभाव इनमें रन्नका काव्य वस्तुत: कवियोंका उपजीवक है । इसके काव्योंमें खास कर गदायुद्ध वीररसप्रधान एक सर्वश्रेष्ठ काव्य है । वीररसप्रधान, काव्योंमें बहुधा चित्ताकर्षक शब्द शैली, भिन्न २ रसोंकी स्फूर्ति आदि बहुत ही कम देखनेमें आती हैं । परन्तु उपर्युक्त गदायुद्धमें प्रयुक्त महाकविकी शब्दशैलीको देखकर प्रत्येक कुशल विमर्शक इसकी अद्भुत प्रतिमाको मुक्तकन्ठसे प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता । काव्योंमें उचित शब्दोंका प्रयोग और माधुर्य आदि गुणोंका पाया जाना ही महा-

---

+ ' रन्नकविप्रशस्ति ' पृष्ठ १८–१९.

काव्यका लक्षण है। इन गुणोंकी उपलब्धिके लिए काव्यकलाका अभ्यास तथा पूर्वसंस्कारकी मौजूदगी परमावश्यक है। रन्नमें ये दोनों गुण मौजूद थे। खास कर समयोचित पदप्रयोगमें कवि बहुत ही कुशल था। अपने प्रत्येक पद्यमें प्रयुक्त जीवभूत एक ही पदके द्वारा सहृदय पाठकोंके हृदयमें सहसा एक साथ नाना-विध भावनाओंको पैदा कर देनेवाली एक विलक्षण प्रतिभाशक्ति महाकवि रन्नमें थी। जहांपर कुछ भी लिखनेको गुंजाइश नहीं है, वहांपर भी बहुत कुछ लिखनेका विचित्र सामर्थ्य कवि चक्र-वर्तीमें था। इन सबोंको देखनेके लिए रन्नका गदायुद्ध ही एकमात्र आदर्श है। वीररसप्रधान इस महाकाव्यमें शृंगार, करुणा आदि अन्य रस केवल अंगभूत हैं। महाकविने इसमें विभाव अनुभाव सात्विक और संचारी आदि रसोत्पत्तिके कारणोंको भी बहुत ही सुंदर ढंगसे अंकित किया है। मैसूर विश्वविद्यालयके भूतपूर्व रजिस्ट्रार श्रीमान् बी. एम. श्रीकंठय्य एम. ए. के शब्दोंमें 'रन्नका गदायुद्ध कन्नडके परमोत्कृष्ट काव्योंमें अन्यतम है। नाटकसन्निधान, पात्रकल्पना, समयोचित भाव, रसप्रवाह और शैली आदि इसके सभी गुण अद्वितीय हैं। अधिक प्रयाससे प्रसन्न होनेवाला व्यक्ति भी इस काव्यसे मुग्ध होकर ऐसे कवि एवं काव्यको पानेवाली कन्नड भाषा वस्तुतः धन्य है, यों अवश्य कहेगा। इस काव्यको देखनेसे विश्वास होता है कि 'रन्नके कृतिरत्नकी परीक्षा करनेवालोंमें कितना धैर्य चाहिए! यों अपनी कृतियोंके बारेमें रन्नने जो कहा है, वह केवल गर्वोक्ति नहीं है ×।

× 'रन्नकविप्रशस्ति' की प्रस्तावना.

महाकवि रन्न व्यर्थ तथा नीरस शब्दोंका प्रयोग करना जानता ही नहीं था। इसने अपने काव्योंमें कहीं भी व्यर्थ विशेषण एवं प्रासनियमार्थ अव्यावर्त शब्दोंका प्रयोग किया ही नहीं है। नीरस विषयोंको भी सरस बनाकर वर्णन करनेकी एक विलक्षण प्रतिभा रन्नमें थी। इसके बुद्धिकौशल्य, प्रयोगचातुर्य आदिको देखनेके लिए एक बार कविका गदायुद्ध आमूलाग्र पढना परमावश्यक है। कविचक्रवर्तीने इस काव्यमें प्रधान वीररसके साथ २ बीभत्स, करुणा आदि अन्य रसोंको भी यथेष्ट स्थान दिया है।

काव्यापकर्षके कारणभूत शब्द और अर्थदोष न होनेसे एवं काव्योत्कर्षके साधनभूत प्रसाद,माधुर्य,सौकुमार्यादि गुणोंके होनेस नागवर्मा, केशिराज और भट्टाकलंक आदि मान्य वैयाकरणोंने रन्नके काव्योंसे यथेष्ट उदाहरण लिया है। वस्तुतः महाकविके काव्योंमें प्रयुक्त गुण, अलंकार वृत्ति और रस आदि काव्यके सभी अंग सुंदर एवं निर्दुष्ट हैं। अगाध पाण्डित्य तथा लोकोत्तर प्रज्ञाके अधिकारी रन्नने अपने काव्योंको सालंकार और सलक्षण बनानेमें कुछ भी उठा नहीं रखा है। श्रीमान् के. सुब्रह्मण्य शास्त्रीजीके शब्दोंमें ' पदोंके अनुकूल विश्रांति प्रदान करनेवाली शय्या, विकटाक्षर बंधवाली गौड रीति, रसपूर्ण द्राक्षापाक, अभिमतार्थसूचक व्यंजक शब्द, अल्पाक्षरसमासयुक्त वाक्य, भारतीवृत्ति इन्हें ढूंढ ढूंढ कर समुचित स्थान तथा सन्निवेशोंके द्वारा हृदयंगम पद्योंकी रचना करनेमें रन्न सुप्रसिद्ध है। एक ही पद्यमें काव्यागके कुछ गुणोंको वर्णन करनेमें यही समर्थ है। रन्नके

काव्योंमें पाए जानेवाले उपर्युक्त गुण अन्य कवियोंके काव्योंमें बहुत कम पाए जाते हैं ≥ । '

कविचक्रवर्तीके कविताचातुर्यको परखनेके लिए कविके द्वारा अपने काव्योंमें प्रयुक्त अन्यान्य अलंकारोंको भी एक बार देखना अत्यावश्यक है। इसके काव्योंमें १– उपमा, २– रूपक, ३–उत्प्रेक्षा, ४– अतिशयोक्ति और ५– परिवृत्ति आदि भिन्न भिन्न अलंकार बहुत ही चित्ताकर्षक ढंगसे प्रयुक्त हैं। यहांपर उन पद्योंको उद्धृत कर उन पद्योंका हिंदी भावार्थ देनेसे परिचयका कलेवर बढ जायगा जो कि अनभीष्ट है। अस्तु, अब रन्नकी शैली और रसपर भी दो शब्द कह देना आवश्यक है। इस लिए सर्वप्रथम रसपर ही थोडासा प्रकाश डालनेका यत्न किया जाता है।

महाकवि रन्नके उपलब्ध दो काव्योंमें अजितपुराण शांतरसप्रधान काव्य है। बल्कि श्रीमान् ए. आर. कृष्ण शास्त्रीजी एम. ए. की रायसे रन्नके कालमें ही कन्नड काव्योंमें नवम

≥ 'रन्नकविप्रशस्ति' पृष्ठ ४३.

१ 'अजितपुराण' आश्वास ६, पद्य १२.
२ 'अजितपुराण' आश्वास ६, पद्य २७.
३ 'अजितपुराण' आश्वास ६, पद्य ३८ और ६८.
४ 'अजितपुराण' आश्वास ९, पद्य १७.
५ 'गदायुद्ध' आश्वास २, पद्य ४.

शान्तरस अंगीकृत हुआ। इसके पूर्व इनमें सिर्फ आठ ही रस व्यवहृत होते थे =। अजितपुराणमें शान्तरसके बाद श्रृंगार-रसका नाम लिया जा सकता है। इसमें श्रृंगाररस जनसामान्यकी रुचिको दृष्टिमें रखकर ही लिया गया होगा। साधारण जनता अपनी दुर्बलताके कारण अन्य रसोंकी अपेक्षा श्रृंगाररसको अधिक पसंद करती है। उक्त पुराणमें शांत, श्रृंगारके अतिरिक्त शेष रसोंका अभाव नहीं है। किन्तु उनकी मात्रा बहुत कम है। इसीलिए यहापर उन रसोंकी कोई गिनती नहीं है। इस प्रकरणमें और एक बातको कह देना आवश्यक है। वह यह है कि शान्त-रसप्रधान काव्योंमें श्रृंगाररसका होना अनिवार्यसा है। बल्कि कहीं कहीं श्रृंगार वैराग्यकी तीव्रताको बढा देती है। पर शांत और श्रृंगार दोनोंके द्वारा जनताको प्रसन्न करना आसान काम नहीं है। फिर भी औचित्यहानि, रसाभास तथा रसक्षय आदि सम्पूर्ण काव्यदोषोंसे अजितपुराणको मुक्त करके अपने कार्यमें पूर्ण सफलता प्राप्त करना रन्न जैसे महाकविको ही साध्य है। एक पौराणिक ग्रंथमें कविचक्रवर्ती इससे अधिक कुछ कर भी नहीं सकता था। अब लीजिए गदायुद्धको। वस्तुतः गदायुद्ध रसोंका एक आगर है। इसमें वीररस प्रधान है। रौद्र और करुणा उपष्टंभक हैं। श्रृंगारादि रस भी आये हैं अवश्य। पर पुष्ट नहीं है। गदायुद्धमें समरभूमिके वर्णनमें भीभत्सरस, कर्ण,

---

= 'रन्नकविप्रशस्ति' पृष्ठ २२९ का फुटनोट·

दुश्शासन आदिके वियोग-वर्णनमें करुणारस, बहुत ही सुंदर ढंगसे वर्णित है। गदायुद्धके सम्बन्धमें पहले भी काफी लिखा जा चुका है। इसलिए अब रन्नकी शैलीको लीजिए।

प्रत्येक प्रौढ कविमें एक व्यक्तित्व रहता है। अविवादतः इस व्यक्तित्वके उत्कर्षने ही शैलीमें एक तरहकी कांति आ जाती है। अर्थात् पाठकोंको शैली एकध्वनिसे सुश्राव्य बन जाती है। पूर्वोक्त इस अचल नियमानुसार महाकवि रन्नमें भी एक व्यक्तित्व था। बल्कि कविचक्रवर्तीका यह व्यक्तित्व सामान्य व्यक्तित्व नहीं था। अन्यान्य गुणोंकी तरह रन्नकी शैली भी अन्यादृश ही थी। इसमें एक स्थायी उच्चत्व अपने आप दृष्टिगोचर होता है। रणक्षेत्रवर्णन जैसे घृणोत्पादक प्रकरणमें भी महाकविने अपनी निर्दोष एवं गंभीर शैलीमें दोष न आने दिया। वस्तुतः रन्नकी शैली उच्चतर है। शब्दाडम्बरसे ही शैलीमें उच्चता नहीं आती है। इसके लिए कविमें वाग्वैभव अवश्य चाहिए। कविता अभ्यासजन्य नहीं है, संस्कारजन्य है। इसलिए कहा जाता है कि नैज कविताज्ञान दैवदत्त है। महाकवि रन्न भी निस्संदेह नैज कवियोमें था। इसीलिए रन्नके मुंहसे शब्द समूह बिना प्रयत्नके अनायास ही निकल पडते थे। कविचक्रवर्ती रन्नमें और एक विशिष्ट गुण था। वह यह है कि प्रत्येक बातको सहृदय पाठकोंके मनमें बैठानेके लिए कवि कुछ भी उठा नहीं रखता था। इसके लिए इसने नूतन शब्दोंके द्वारा अपने भावोंको जहा तहा दुहराया भी है। इस प्रकार रन्नकी शैली

सुस्पष्ट होनेसे वह सर्वादरणीय हुआ। वस्तुतः महाकविकी शैली अपनी कविताका दर्पण है। रन्नकी कविताको पढते ही कवि-भाव, अर्थपुष्टि, शब्दगांभीर्य, अलंकार, गुण आदि तत्क्षण ही झलक जाते हैं। महाकविकी शैली सरल तथा अवक्र है। इसके काव्योंमें अर्थ एवं शद्बसपत्ति दोनों मौजूद हैं। इसने अपने काव्योंमें अन्य कवियोंकी तरह संस्कृत शद्बोंको यथष्ट लिया है। श्रीमान् प्रो. एस बी. रंगण्णकी रायमे महाकवि रन्न ग्रीक कवि इस्कीलस, आंग्लकवि मिल्टन आदि पाश्चात्य महाकवियोंका समकक्षका है। बल्कि प्रो. सा. ने रन्नके अमरकाव्य गदायुद्धको मिल्टनके प्यारडैस लास्ट [Paradese Lost] के साथ सुंदर ढंगसे तुलना की है ×।

रन्नकी एक बात यहापर अवश्य खटकती है कि महाकवि पंपकी रीति तथा कृतिको आदर्श मानकर भी आश्चर्य है कि इसने अपने गदायुद्धमें पंपका नाम तक नहीं लिया है। हा, अजितपुराणमें इसने पंपकी प्रशंसा अवश्य की है। रन्नके विशिष्ट सामर्थ्यको हम गदायुद्धमें दुर्योधनके गुणनिरूपणमें देख सकते हैं उक्त ग्रंथके वस्तुरचनाकौशल तथा पात्रनिरूपणनैपुण्य इन दोनोंसे रन्न निस्संदेह महाकवि सिद्ध होता है पहले ही कह जा चुका है कि रन्न संस्कृतका भी प्रौढ विद्वान था पर खेद की बात है कि अभीतक इसका कोई भी संस्कृत ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ है। हा, इसकी उपलब्ध कृतियोंमें जहा-तहा प्रयुक्त संस्कृत गद्य-पद्योंसे हम इसके संस्कृत पाण्डित्यको आसानीसे आक सकते हैं। उदाहरणार्थ नीचे महाकविके अजितपुराणसे एक गद्य उद्धृत कर दिया जाता है:—

× रन्नकविप्रशस्ति, पृष्ठ २६७—२६८.

"जय जय जगत्त्रयपतिकिरीटकूटकोटिमसृणचारुचञ्चन्नख-मयूखोदन्तमयूखमण्डल, मण्डलीभूतसकलदिक्पालमालामौलिमणि-किरणजालबालातपच्छायारुणिततरुणपारिजातपल्लवायमानपादपल्लव, पल्लवितकुसुमितानल्पकल्पलतायमानकल्पेश्वरप्राणेश्वरिसमुल्लासितक-रतलपल्लवनखमयूखरुचिरप्रचुरकाश्मीराङ्गरागद्विगुणीकृतकनककमनीय-कायकान्तिभ्रमद्भ्रमरकुलविनीलकुटिलसञ्चलत्कुन्तलकलापलग्न दुग्धोदबिन्दुसन्दोहसन्दिग्धमूर्त्तभूषणव्यक्तमुक्ताजालप्रकरकरक मलमुकुलालङ्कृतरुन्द्रललाटपट्ट, द्वात्रिंशदिन्द्रमणिमयकिरीटको टिघट्टित पादपीठ, पीठीकृतमन्दराचलशिखरशेखरीभूततिलकायमान-महनीयमहिमोदय, महिमोदयोद्भासितभगवज्जिनेन्द्रवृन्दवृन्दारक, श्रीमदजितभट्टारक, जिन, नमस्ते नमस्ते नमस्ते।"

—*—

चावुण्डराय

ई. सन्. ९७८

जैन ऐतिहासिक महाव्यक्तियोंमें वीरमार्तण्ड चावुण्डराय भी एक है। भारतका इतिहास इसका अमर नाम कभी भुला नहीं सकता। बल्कि इसके द्वारा निर्मापित श्रवणबेल्गोलकी वह अद्भुत, विशाल मूर्ति जबतक मौजूद रहेगी तबतक इसकी धवल कीर्ति अविच्छिन्न रूपसे फैली रहेगी। एक बात हमें याद रखनी चाहिए कि जैसे वह मूर्ति अद्भुत, अनुपम, एवं विशाल है, इसी प्रकार वीरमार्तण्डका व्यक्तित्व भी सचमुच अद्भुत, अनुपम

तथा महान् है। यद्यपि चावुण्डरायकी जीवन घटनाओंका पूर्ण परिचय हमें प्राप्त नहीं है, फिर भी यत्र-तत्र उपलब्ध कीर्तिगाथाओंसे इसके महान् व्यक्तित्वका पता अवश्य लग जाता है।

स्वरचित "त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण" × एवं श्रवण-बेल्गोलके विन्ध्यगिरिवाले २८१ वें शिलालेखमें चावुण्डराय ब्रम्ह-क्षत्रियवंशज बतलाया गया है। इससे अनुमान होता है कि मूलमें इसका वंश ब्राह्मण था, बाद क्षत्रियकर्म अर्थात् असि-कर्मको अपनानेसे यह क्षत्रिय गिने जाने लगा। खेदकी बात है कि दुर्भाग्यसे इसके माता-पिता कौन थे और इसका जन्म कहा और किस तिथिको हुआ था, आदि बातोंका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। यों तो 'भुजबलिचरित'* में लिखा है कि इसकी माता का नाम काललदेवी था। हा, चावुण्डराय दीर्घकालतक जीवित रहा, यह अनुमान करना आसान है। क्योंकि इसे एक-दो नहीं, तीन शासकोंके शासनकालमें काम करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। साथ ही साथ यह जानना भी सुलभ है कि चावुण्डरायके बहुमूल्य जीवनका अधिकांश भाग गंगोंकी राजधानी तलकाडमें ही व्यतीत हुआ था।

× पृष्ठ ५.

* यह चरित मेरे ही द्वारा सम्पादित होकर 'जैन-सिद्धांत-भास्कर' में प्रकाशित है।

आचार्य अजितसेनके परमशिष्य, गंगकुलाब्धिचन्द्र, गंगकुलचूडामणि, जगदेकवीर, धर्मावतार आदि अन्वर्थ उपाधियोंसे विभूषित राचमल्ल (चतुर्थ) इनका प्रकृत आश्रयदाता था। जिस गंगवंशका सुदृढ राज्य मैसूरु प्रान्तमें लगभग ईसाकी चौथी शताब्दीसे लेकर ग्यारहवीं शताब्दीतक बना रहा, राचमल्ल उसी गंगवंशका सुशासक मारसिंहका उत्तराधिकारी था। गंगा राजाओंके शासनकालमें वर्तमान मैसूरुका बहुभाग उसीके राज्यके अन्तर्भुक्त था, जो उस समय 'गंगवाडि' कहलाता था। गंगराज्य उस समय अपनी सर्वोत्कृष्ट दशापर पहुंच गया था और आदिसे ही इस राज्यका जैनधर्मसे घनिष्ट सम्बन्ध रहा। बल्कि श्रवणबेल्गोलके लेख नं. ५४ (६७) एवं गंगवंशके अन्यान्य दानपत्रोंसे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि गंगवंशकी जड जमानेवाले जैनाचार्य सिंहनन्दी ही थे। इस कथनको 'गोम्मटसारवृत्ति' के रचयिता अभयचन्द्र त्रैविद्यचक्रवर्तीने भी स्वीकार किया है। हेब्बूरु ताम्रशासके आधारपर मे. राइस साहबका कहना है कि आचार्य पूज्यपाद इसी वंशके सातवें शासक दुर्विनीत (ई. सन् ४७८–५१३) के राजगुरु थे। जैनधर्मके उपासकोंमें राचमल्लका पूर्वाधिकारी गंगनरेश मारसिंहका नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। इसने कई जैन मन्दिर तथा स्तम्भ आदि निर्माण कराकर अन्तमें अजितसेन भट्टारकके निकट समाधिमरणपूर्वक बंकापुरमें शरीरत्याग किया था।

चावुण्डराय उपर्युक्त राचमल्ल (चतुर्थ) का सुयोग्य सेनापति और मंत्री था। इस राचमल्लके निष्कंटक शासनकालमें ही वीरमार्तण्डने श्रवणबेल्गोलकी संसार विख्यात श्री गोम्मटेश्वर मूर्तिको स्थापित किया था। बल्कि चावुण्डरायकी 'राय' यह उपाधि भी इसके इस धार्मिक उदार कार्यसे सन्तुष्ट होकर राचमल्लके द्वारा ही दी गयी थी, जो कि धर्ममूर्ति चावुण्डरायके लिए सर्वथा उपयुक्त है। गोम्मटसार कर्मकाण्ड तथा जीवकाण्डसे आचार्य अजितसेन चावुण्डरायके गुरु एवं उसकी टीकासे व्रत-गुरु स्पष्ट सिद्ध होते हैं =। यद्यपि चावुण्डरायके विद्याध्ययनके सम्बन्धमें कुछ भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। फिर भी यह अनुमान लगाना आसान है कि इसका विद्याध्ययन किसी सुयोग्य गुरुके निकट ही हुआ है। इसीलिए यह शस्त्र, शास्त्र एवं शिल्प आदि सभी कलाओंमें निष्णात था। हां, पीछे आचार्य नेमिचन्द्रके निकट इसने अपने आध्यात्मिक ज्ञानको उन्नत बनाया था। नेमिचन्द्रजीने स्वयं चावुण्डरायके गुणोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है ×।

= जम्मि गुणा विस्संता गणधरदेवादिइड्ढिपत्ताण।
सो अजियसेणणाहो जस्स गुरू जयउ सो राओ ॥९६६॥
अज्जज्जसेणगुणगणसमूहसंधारिअजियसेणगुरू।
भुवणगुरू जस्स गुरू सो राओ गोम्मटो जयतु ॥७३३॥

× सिद्धंतुदयतडुग्गयणिम्मलवरणेमिचन्दकरकलिया।
गुणरयणभूसणंबुहिमइवेला भरउ भुवणयलं ॥९६७॥—कर्मकाण्ड

जिस प्रकार इसका बाल्य-जीवन अंधकाराच्छन्न है, उसी प्रकार गृहस्थ-जीवन भी। हां, इतना पता तो अवश्य लगता है कि इसकी सौभाग्यवती गृहिणीका नाम अजितादेवी और पुत्रका नाम जिनदेव था। गंगनरेशोंका राजमंत्री तथा सेनानायक जैसे उच्च पदपर चावुण्डरायका आसीन होना ही इसकी योग्यताका एक समुज्ज्वल निदर्शन है। वास्तवमें चावुण्डराय अपने कुलको भी एक दैदीप्यमान रत्न था। इसीलिये विद्वानोंने इसे 'ब्रह्म-क्षत्रकुलभानु,' 'ब्रह्मक्षत्रकुलमणि' आदि विशेषणोंके द्वारा स्मरण किया है। शासनाधिकाररूपी उच्चतम पदपर आरूढ होकर भी यह अपने नैतिकमार्गसे तिलभर भी कभी नहीं डिगा था। तब न 'शौचाभरण,' सत्ययुधिष्ठिर आदि गौरवपूर्ण शब्दोंसे यह उल्लेख किया गया है।

चावुण्डरायने सेनापति जैसे उत्तरदायित्वपूर्ण पदको बहुत ही योग्यताके साथ निबाहा है। यही कारण है कि इसने खेडगके युद्धमें वज्जलदेवको हराकर 'समरधुरंधर;' गोनूरके मैदानमें नोलंबोंके समरमें जगदेकवीरको पराजित कर 'वीरमार्तण्ड;' उच्चंगिके किलेको हस्तगत कर 'रणरंगसिंग; बागेयूर दुर्गमें त्रिभुवनवीरको मारकर गोविंदको शासक बनानेके उपलक्ष्यमें 'वैरिकुलकालदण्ड, नृपकामके दुर्गमें राज, वास, सिवर एवं कुणाक आदि शूरोंपर विजय पानेके कारण 'भुजविक्रम;' अपने सहोदर नागवर्मको मारनेवाले 'चलदंकगंग,' 'गंगरभट '

मदुराचयको तलवारके घाट उतारनेके हेतु ' समरपरशुराम ' और अन्य वीरोंको दमन करके निदान ' प्रतिपक्षराक्षस ' तथा करोड़ों वीरभटोंका पराभव करनेसे ' भटमारि ' जैसी प्रचण्ड वीरताद्योतक उपाधियां प्राप्त की थी ०। बल्कि ' अतिप्रचण्डवीरमाण्डलिक शिखण्ड-मण्डनमणि ' होनेसे ' सुभटचूडामणि 'के उपाधिसे भी यह विख्यात था। वास्तवमें उपर्युक्त इन उपाधियोंसे चावुण्डराय उस युगके एक अद्वितीय वीरशिरोमणि सिद्ध होता है।

वीरमार्तण्ड जिस प्रकार एक सफल सेनापति था उसी प्रकार एक कुशल राजमंत्री भी। इसके मंत्रित्वमें गंगराष्ट्रकी अभूत-पूर्व उन्नति हुई थी। तात्कालीन गंग प्रजाओंकी अभिवृद्धि ही चावुण्डरायके सुशासनका ज्वलंत दृष्टांत है। उस समयके उपलब्ध अनेक भव्य मंदिर, कितनी ही मनोज्ञ मूर्तियां आदि गंगराष्ट्रा-भ्युदयके साक्षी हैं।

वीरमार्तण्ड कन्नड संस्कृत एवं प्राकृतका अच्छा विद्वान् और कवि था। इस समय इसके चारित्रसार [संस्कृत] और त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण [कन्नड] नामक दो ही ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। बल्कि ये दोनों ग्रंथ प्रकाशित भी हो चुके हैं। आचार्य नेमिचन्द्रके कथनानुसार इसने गोम्मटसारपर एक कन्नड वृत्ति भी

०श्रवणबेलगोल लेख नं. १०९, एवं ' चावुण्डरायपुराण '

रची थी ×। उपर्युक्त चारित्रसार एक संग्रह ग्रंथ है =। हां, इसका त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण एक स्वतंत्र ग्रंथ है और यह १० वीं शताद्वीके कन्नड गद्यका एक समुज्ज्वल निदर्शन भी। बल्कि, कन्नड साहित्यमें त्रिषष्टिशलाकापुरुषोंका परिचय करानेवाला यही एक सर्व प्राचीन ग्रंथ है। साथ ही साथ आजतक उपलब्ध कन्नड गद्य–ग्रंथोंमें यह चावुण्डरायपुराण आदिम गद्य ग्रंथ माना जाता है। मालुम होता है कि इसे पद्यकी अपेक्षा गद्य लिखनेकी अधिक सुविधा थी, या अपने ग्रंथोंमें निर्दिष्ट धर्मोपदेशको सर्व-साधारण तक सुगमतासे पहुंचानेके लिये इसने सरल गद्यमें ग्रंथ-रचना करना ही अपना प्रमुख ध्येय बना लिया था। श्रीमान् गोविंद पै के शद्वोंमें इसे जनप्रिय लेखक होना इष्ट था, न कि अपनेको कवि प्रकट करनेकी लालसा। कन्नड साहित्यमें उपलब्ध चंपूग्रंथोंमें इसकी रचनाशैली नितांत विलक्षण है। इसका वर्णनक्रम बिलकुल स्पष्ट और हृदयग्राही होनेके साथ साथ एक जन्मजात वीर योद्धाके स्वभावानुसार ठीक अपने लक्ष्यको प्रकट करनेवाला है। सुकवि चावुण्डरायको ‘ कविजनशेखर ’ उपाधि भी प्राप्त थी।

श्रीमान् गोविंद पै इस ग्रंथके अंतःपरीक्षण–द्वारा इस नतीजेपर पहुंच गये हैं कि ‘ अतः कहना होगा कि इस रचना-कालके अंतरालमें चावुण्डराय विविध रणक्षेत्रोंमें व्यग्र रहा था

×गोम्मटसुत्तल्लिहणे गोम्मटरायेण जा कया देसी।
सो राओ चिरकालं णामेण य वीरमत्तंडो॥९७२॥-कर्मकाण्ड

=‘ जैन-सिद्धान्त-भास्कर ’ भाग २, किरण ३

और उसे ग्रंथ रचनाके लिये बहुत ही अल्प शान्तसमय मिला था। एक योद्धाके जीवनमें प्रवेश कर चुकनेके बाद ही उसने इस धर्मग्रंथकी रचना प्रारंभ की थी और इसकी समाप्तिके साथ ही मालूम होता है, उसका योद्धा–जीवन अंतको पहुंच चुका था। क्योंकि इसके [सन ९७८ ई.] बाद उसको कोई नई उपाधि मिली विदित नहीं होती। हां, 'राय' की पदवी अवश्य इसके बादमें मिली है। परन्तु वह एक धर्म कार्यके उपलक्ष्यमें संभव है, इस ग्रंथकी रचनामें उसे चार वर्षसे भी अधिक समय लगा हो। इसमें आश्चर्य नहीं कि सीजरकी टीकाओं (Caesar's Commentaries) की तरह यह ग्रंथ भी रणक्षेत्रकी शांतिमय घडियोंमें लिखा गया है और मालूम होता है कि इस समयतक चावुण्डरायने समस्त शत्रुओंको परास्त करके गंगराष्ट्रमें सुख–शांतिकी पुण्यधारा बहा दी थी ऽ।

वीरमार्तण्ड कवियोंके सच्चा आश्रयदाता था। जिस समय महाकवि रन्न विद्याध्ययननिमित्त अपने बंधुबांधव एवं जन्म-भूमिको त्याग कर गंगराजधानीमें पहुंचा उस समय चावुंडरायने इसकी विद्यारुचि मुखकी तेजस्विता आदि गुणोंका अनुभव कर इसे अपने पास रखा और इसके अध्ययनकी-पूरी व्यवस्था कर दी। चावुण्डरायके हस्तावलंबनसे कुछ ही समयमें रन्न एक अद्वितीय कवि निकला जिसकी प्रशंसा आज भी संपूर्ण कर्नाटक मुक्तकण्ठसे सगर्व कर रहा है। यह कवि कन्नड कविरत्नत्रयोंमें अन्यतम है। इसकी कवितासे मुग्ध होकर ही राजा तैलपने 'कविचक्रवर्ती' की

ऽ वीर वर्ष ७, अंक १–२

थी। अगर वीरमार्तण्ड असहाय रन्नको उस समय आश्रय नहीं देता तो आज कर्णाटकको इसकी सुधामयी कविताके रसास्वादनका सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं होता। यों तो वीरमार्तण्ड चावुण्डरायके बहुमूल्य जीवनका अधिकांश भाग रणक्षेत्रमें ही व्यतीत हुआ है। फिर भी देवपूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम एवं दान आदि गार्हस्थ्य दैनिक कर्म भी इनसे अलग नहीं हुए थे। वीरमार्तण्ड एक सच्चा, दृढ श्रद्धालु नैष्ठिक श्रावक था। इसीलिये कहा गया है कि निश्शंकादिगुणपरिरक्षणैककारण ही ' गुणवं काव ' ' सम्यक्त्वरत्नाकर ' एवं ' गुणरत्नभूषण ' ये उपाधियां इन्हींसे प्राप्त थी। बल्कि यह श्रावकके अहिंसादि अणुव्रतोंके पूर्ण परिपालक था। अतएव ' शौचाभरण ' ' सत्ययुधिष्ठिर ' आदि उपाधिसे अलंकृत रहा। साथ ही साथ जनप्रिय होनेके हेतु यह ' अण्ण ' जैसे बन्धुत्वसूचक सम्मानित नामसे भी पुकारा जाता था।

इसमें शक नहीं है कि चावुण्डरायका अन्तिम जीवन विशिष्ट धर्मसेवनके साथ व्यतीत हुआ होगा। आचार्य नेमिचन्द्र जैसे महान् विद्वान्का संपर्क इसमें मुख्य कारण है। चावुण्डरायने अपनी धवलकीर्तिको अमर बना रखनेके लिए श्रवणबेल्गोल जैसे प्रमुख सुप्राचीन पुण्यतीर्थको जो चुना है, यह बड़ी ही बुद्धिमत्ताका काम है। वास्तवमें इसके द्वारा स्थापित उपर्युक्त गोम्मट

मूर्तिसे इस तीर्थकी महिमा और बढ गई है। इस दृष्टिसे इसे इस पवित्र भूमिका उद्धारक कहना सर्वथा समुचित है। आजतक बराबर यह क्षेत्र जनताकी नजरोंमें आकृष्ट रहनेका एकमात्र कारण उल्लिखित गोम्मटमूर्ति ही है। अन्यथा दक्षिणके कोपण आदि अन्यान्य प्राचीन क्षेत्रोंके समान ऐतिहासिक दृष्टिसे अन्वेषक विद्वानोंके लिए ही यह स्थान एक अन्वेषणीय वस्तु मात्र रह जाता। इस पुनीत तीर्थकी अभिवृद्धिका सारा श्रेय वीरशिरोमणि चावुण्ड-रायको ही मिलना चाहिये।

चावुण्डरायके सम्बन्धमें विज्ञ पाठक डा. बी. ए. साले-तोरेके अभिप्रायको भी सुन लें– ।

" जैन इतिहासमें चावुण्डरायका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अंकित है। वह केवल वीर ही नहीं, बडा भारी कवि भी था। चावुण्डरायपुराण उसीकी कृति है। यह कर्नाटकका रहनेवाला था। चावुण्डराय गंगवंशके राजा मारसिंह और उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी राचमल्लके दरबारमें था। वह अपनेको 'ब्रह्मक्षत्र' जातिका बतलाया है। इसीलिए उसकी एक उपाधि 'ब्रह्मक्षत्र शिखामणि' भी है। पता चलता है कि उसके गुरु प्रसिद्ध अजितसेन थे। लेकिन नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका भी उसपर काफी प्रभाव पडा था। नेमिचन्द्रने अपनी रचना गोम्मटसारमें चावुण्डरायकी बडी प्रशंसा की है। इसके अतिरिक्त कन्नड कवि चिदानन्दने

भी अपनी रचना ' मुनिवंशाभ्युदय ' में नेमिचन्द्रको चावुण्डरायका गुरु बतलाया है।

जिस युगमें चावुण्डराय हुआ था, वह गंगवंशके राजाओंके लिए बडी मुसीबतका था। वे चारों ओरसे दुश्मनोंसे घिरे हुए थे। अपना अस्तित्व कायम रखनेके लिए और अपनी उन्नतिके लिए उन्हें निरन्तर युद्ध करना पडा, और इसमें संदेह नहीं कि इन युद्धोंके संचालक चावुण्डराय ही था। चावुण्डरायके समयमें गंगराज मारसिंहपर नोलंबोंने चढाई की, लेकिन गोनूरके मैदानमें चावुण्डरायने उनकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया। चावुण्डराय पुराणसे पता चलता है कि इस वीरताके लिए चावुण्डराय ' वीरमार्तण्ड 'की उपाधिसे विभूषित किया गया। ब्रह्मदेवके स्तम्भ-लेखसे मालूम होता है कि इस विजयके अवसरपर स्वयं मारसिंहने ' नोलंबकुलांतक ' की उपाधि धारण की थी।

दूसरा संकट पाश्चिमी चालुक्योंकी ओरसे था। मारसिंहके ही समयमें पाश्चिमी चालुक्योंने उपद्रव मचाना आरम्भ किया था। मारसिंहके पुत्र राचमल्लके समयमें चावुण्डरायने राजादित्यको परास्त कर यह विपत्ति दूर की। कहा जाता है कि उच्चंगिके दुर्जय किलेमें राजादित्यने आश्रय लिया था। इस दुर्गको जीतना एक प्रकारसे असम्भव ही माना जाता था, हां, कुछ समय पहले ' काडुवेटी ' ने इस किलेको घेर डाला था, पर बहुत दिनोंतक घेर डालनेपर भी वह इसे वशमें नहीं ला

सका था। लेकिन चावुण्डरायके आगे इस दुर्गकी दुर्जयता न रह सकी। ब्रह्मदेव-स्तम्भके लेखसे पता चलता है कि चावुण्डरायने इस किलेको विध्वस्त कर संसारको आश्चर्यमें डाल दिया। स्वयं चावुण्डरायकी कृति चावुण्डरायपुराणसे भी इस बातकी पुष्टि होती है। वह लिखता है कि उच्चंगीके किलेको वीरता-पूर्वक हस्तगत करनेके कारण उसे 'रणरंगसिंग' की उपाधि मिली थी। त्यागद ब्रह्मदेव-स्तम्भके लेखसे मालूम होता है कि 'रणसिंग' राजादित्यकी उपाधि थी। इस प्रकार चावुण्डरायने शत्रुको परास्त कर उसकी उपाधि धारण की थी। स्वयं राचमल्लने भी इस विजयोपलक्ष्यमें 'जगदेकवीर' की उपाधि ग्रहण की थी।

तीसरी घटना जिसकी वजहसे चावुण्डरायने 'समरधुरंधर' की उपाधि पाई, खेडगका युद्ध है। इस युद्धमें उसने वज्जलको परास्त किया था। इसका वृत्तान्त चावुण्डरायपुराणमें मिलता है। त्यागद ब्रह्मदेव-स्तम्भ लेखमें भी इसका उल्लेख है। उक्त पुराणके अनुसार चावुण्डरायने बागेयूर दुर्गके त्रिभुवनवीर नामक एक सरदारको मारकर 'वैरिकुलकालदण्ड' की उपाधि पाई। इसके बाद राज, बास, सिवर, कुणाक आदि सरदारोंको काम नामक राजाके दुर्गमें मारकर 'भुजविक्रम' की उपाधि प्राप्त की। मदुराचयने, जो 'चलदंकगंग' और 'गंगरभट' नामसे भी प्रसिद्ध है, चावुण्डरायके छोटे भाई, नागवर्माको मार डाला था।

चावुण्डरायने उसे मारकर भाईका मृत्युका बदला चुकाया। त्यागद ब्रह्मदेवस्तम्भलेखसे मालूम होता है कि चलदंकगंगने गंगराजसिंहासनपर अधिकार जमाना चाहा था। चावुण्डरायने उसके प्रयासको निष्फल करके उसका नाश किया और इस तरह अपना बदला भी चुका लिया। इस सफलतापर उसे ' समरपरशुराम ' की उपाधि मिली। उक्त पुराण ही से यह भी पता चलता है कि अन्य कई वीरोंपर विजय पानेके कारण उसे ' प्रतिपक्षराक्षस ' की उपाधि मिली थी। इन उपाधियोंके अतिरिक्त वह ' भटमारि ' और ' सुभटचूडामणि ' की उपाधियोंसे भी भूषित किया गया था।

चावुण्डराय केवल वीर और युद्धपरायण ही नहीं था, उसमें वे सभी गुण थे, जो विशिष्ट और धर्मानुरागी व्यक्तियोंमें पाये जाते हैं। अपने सद्गुणोंके कारण ही उसे ' सत्ययुधिष्ठिर ' गुणरत्नभूषण ' और ' कविजनशेखर 'की उपाधियां मिली थीं।' ' राय ' भी एक उपाधि ही थी, जो राजाने उनकी उपकारप्रियता और उदारतासे प्रसन्न होकर उसे दी थी।

चावुण्डरायने जैनधर्मके लिये क्या किया, यह बतानेके लिये ११५९ ई. के एक लेखका उद्धरण देना उचित होगा। उक्त लेखमें लिखा है— " यदि यह पूछा जाय कि शुरूमें जैन मतकी उन्नतिमें सहायता पहुंचानेवालोंमें कौन-कौन

लोग हैं ? तो इसका उत्तर होगा— केवल चावुण्डराय ।"
उसके धर्मोन्नतिसम्बन्धी कार्योंका विशद वर्णन न कर हम सिर्फ इतना ही उल्लेख करेंगे कि श्रवणबेल्गोलमें स्थापित गोम्मटेश्वरकी विशाल मूर्ति चावुण्डरायकी ही कीर्ति है । यह मूर्ति ५७ फीट ऊंची है और एक ही प्रस्तरखण्डकी बनी है * ।

श्रीधराचार्य

ई. सन्. १०४९

यह बेलुवल नाडान्तर्गत नरिगुंदका वासी है । इसने अपनेको 'विप्रकुलोत्तम' बतलाया है । इस समय इसका 'जातकातिलक' नामक एक ज्योतिष ग्रन्थ मात्र उपलब्ध होता है । हां, इस जातकतिलकके अन्तिम पद्यसे पता चलता है कि इसने एक 'चन्द्रप्रभचरित' भी रचा था × । परंतु अभीतक यह ग्रन्थ कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ है । कवि कहता है कि "विद्वानोंने मुझसे कहा कि अभीतक कन्नडमें किसीने भी ज्योतिष सम्बन्धी ग्रन्थ नहीं रचा है । इसलिये तुम 'जातक-तिलक' अवश्य लिखो । विद्वानोंकी इस प्रेरणाको पाकर

---

* 'जैन सिद्धान्त-भास्कर' भाग ६, किरण ४

× सुभगवचं काव्यकवित्वभूषणं श्रीधराचार्यरचितं 'चन्द्र- । प्रभचरितं' शास्त्रकवित्वभूषणं धरेगे नेगळ्द 'जातकतिलकं ॥

ही मैंने जातकतिलककी रचना की है । " इससे सिद्ध होता है कि कन्नडमें ज्योतिषसम्बन्धी ग्रन्थ लिखनेवालोंमें श्रीधराचार्य ही प्रथम है । यह बात बाहुबली (ई. सन् लगभग १५६०) की ' नागकुमारकथा ' के आदिभागके पद्यसे भी पुष्ट होती है ।

ग्रन्थरचयिताके कथनानुसार यह ग्रन्थ शा. श. ९७१ × (ई. सन् १०४९) में रचा गया था । जातकतिलकके अंतिम पद्यसे सिद्ध होता है कि श्रीधराचार्य चालुक्य राजा आहवमल्लके शासनकाल (ई. सन् १०४२–१०६८) में वर्तमान था । कविको ' गद्यपद्य विद्याधर ' और 'बुधमित्र' उपाधियां प्राप्त थीं । इसने अपनेको ' विधुविशदयशोनिधि ' काव्यधर्मजिनधर्मगणित-धर्ममहाम्भोनिधि, बुधमित्र, निजकुलाम्बुजाकरमित्र, रसभावसमन्वित, सुभग, अखिलवेदी, अन्वित, समग्र, अनवद्य, कवितागुणार्णव, प्रौढविलासिनीमनासिज, शीलभद्र, द्विषज्जनदुर्वारगजांकुश, सुजन-रत्न, कर्णाटकवीन्द्र, सद्गुण, गुणसंज्ञाधार आदि विशेषणोंके द्वारा संकेतित किया है ।

जातकतिलकका विषय ज्योतिष है । यह कंद वृत्तोंमें लिखा गया है । इसमें २४ अधिकार हैं । अधिकारोंके नाम निम्न, प्रकार हैं ।

× ' धरणिगिरिनिधिशकाङ्क '

(१) संज्ञा, (२) बलाबल, (३) गर्भ, (४) जन्म, तिर्यग् जन्म, (६) अरिष्ठ, (७) अरिष्टभङ्ग, (८) आयुर्दाय, (९) दशान्तर्दशा, (१०) अष्टकवर्ग, (११) जीव, (१२) राजयोग, (१३) नाभिसंयोग, (१४) चन्द्रयोग, (१५) द्वित्रियोग, (१६) दीक्षायोग, (१७) राशि, (१८) लग्नभाव, (१९) द्रेक्काण, (२०) दृष्ट, (२१) अनिष्ट, (२२) स्त्रीजातक, (२३) निर्याण, (२४) नष्टजातक।

यद्यपि कविने अपने ग्रन्थकी उत्कृष्टता कई पद्योंमें बतलाई है। उनमेंसे पाठकोंके अवलोकनार्थ यहांपर सिर्फ एक पद्य नीचे उद्धृत किया जाता है—

" ललितवचोललनानन- । तिलकं दैवज्ञवदनतिलकं विद्व- ॥
त्कुलमुखतिलकं जातक- । तिलकं त्रैलोक्यतिलकमिदु केवलमें ॥ "

ग्रन्थावतारमें जिन और सरस्वतीकी स्तुति की गई है। प्रत्येक अधिकारके अन्तमें यह गद्य मिलता है—

" .. भगवदर्हत्परमेश्वरचरणसरसिरुहषट्पदायमानं सरसप्रसन्नवचोलक्ष्मीधरं गद्यपद्यविद्याधरं श्री श्रीधराचार्यप्रणीतं "

श्रीधराचार्यने ज्योतिषका प्रयोजन इस प्रकार बतलाया है—

'भवबद्ध शुभाशुभ कर्मविपाकका फल जाननेके लिये ज्योतिर्ज्ञान अंधेरी कोठरीमें रखी हुई वस्तुओंको स्पष्ट दिखलानेवाले प्रदीपके समान है।'

वस्तुत: ग्रन्थ सुन्दर है। कविने वर्णनीय विषयोंको सरल शैलीमें खूबीके साथ वर्णन किया है। अगर समय अनुकूल रहा तो मैं इसका हिन्दी अनुवाद हिंदी भाषाभाषियोंके समक्ष अवश्य रखूंगा। इस ग्रन्थके प्रकाशनसे जैन ज्योतिष शास्त्रपर भी थोड़ा बहुत प्रकाश अवश्य पड़ेगा।

दिवाकरनन्दी

ई. सन लगभग १०६२

इन्होंने उमास्वामिके तत्वार्थसूत्रकी कन्नड वृत्ति रची है। इस बातका उल्लेख हमें नगरके ५७ वें शासनमें उपलब्ध होता है। साथ ही साथ इन शासनसे यह भी ज्ञात होता है कि आपके श्रद्धेय गुरु भट्टारक चन्द्रकीर्ति थे। मालूम होता है कि दिवाकरनन्दी 'उभयसिद्धान्तरत्नाकर' इस बहुमूल्य उपाधिसे विभूषित भी थे। नगरके ५७ एवं ५८ वें शासनोंमें इनकी बड़ी प्रशंसा लिखी है। इन शासनोंका लेखक मल्लिनाथ इन्हींका प्रशिष्य था अर्थात् दिवाकरनन्दीका शिष्य सकलचन्द्र सकलचन्द्रका शिष्य मल्लिनाथ। एक बात और है। मल्लिनाथका पिता पट्टणस्वामी नोकय भी इन दिवाकरनन्दीका ही शिष्य था। उक्त शासनोंमें पट्टणस्वामीके द्वारा दिये गए दानका विस्तृत वर्णन अंकित है। यह शासन चालुक्य

शासक त्रैलोक्यमल्लके शासन-कालमें वीर सांतरके समयमें लिखा गया था। ५८ वें शासनमें लेखन-काल भी दिया गया है। यह शा. श. ९८४ (ई. सन् १०६२) में लिखा गया था। बल्कि श्रीमान् स्व. आर. नरसिंहाचार्यने अपने 'कविचरिते' में दिवाकरनन्दीका जो समय (ई. सन् १०६२) दिया है वह इसी आधारपर दिया होगा।

इसमें शक नहीं है कि दिवाकरनन्दी एक सुयोग्य विद्वान् थे। यह कन्नडके ही पण्डित नहीं थे, संस्कृतके भी। इन्होंने तत्त्वार्थवृत्तिका मंगल पद्य संस्कृत भाषामें ही रचा है ×। पद्य सुगम तथा सुन्दर है। दिवाकरनन्दीकी उक्त तत्त्वार्थवृत्तिके अंतमें एक गद्य है *। इस गद्यसे ज्ञात होता है कि आपके गुरु सिर्फ पूर्वोक्त भट्टारक चन्द्रकीर्ति ही नहीं थे, किन्तु पद्मनन्दी सिद्धान्तदेव भी। इसमें वृत्तिके रचयिताने अपनी वृत्तिको लघुवृत्तिके नामसे उल्लेख किया है। साथ ही साथ गद्यमें दिवाकरनन्दीने अपनेको 'आसादितसमस्तसिद्धान्तामृतपारावार' लिखा है। मालूम होता है तत्त्वार्थसूत्रमें दश अध्याय हैं। इसलिये वृत्तिमें भी प्रकरण दश ही रखे गए हैं। यह है भी समुचित। उपर्युक्त

× 'नत्वा जिनेश्वरं वीरं वक्ष्ये कर्नाटभाषया।
तत्त्वार्थसूत्रसूत्रार्थं मन्दबुद्ध्यनुरोधतः ॥

* ....सकलागमसम्पन्नश्रीमच्चन्द्रकीर्तिभट्टारकपद्मनन्दिसिद्धान्तदेवश्रीपादप्रसादासादितसमस्तसिद्धान्तामृतपारावारश्रीमद्दिवाकरनन्दिभट्टारकमुनीन्द्रविरचितत्त्वार्थसूत्रानुगतकर्णाटकलघुवृत्ति........'

नगरके शासनोंमें दिवाकरनन्दीके सम्बन्धमें कहे गए प्रशंसात्मक वाक्योंमेंसे कुछ वाक्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं— ।

'………… सदसदादिवस्तुस्वरूपनिरूपणप्रवीणरुं, सिद्धान्तामृतवार्धिबाधौतविशुद्धेद्धबुद्धिसमृद्धरुमप्पसिद्धान्तरत्नाकररप्प, श्रीमद्दिवाकरनन्दिसिद्धान्तदेव………… '

'…………गुणिगल्, सिद्धान्तरत्नाकररमलचारित्रमहायोगिवृन्दाग्रणिगल्, श्रीशान्तिनाथक्रमकमलयुगाराधकर्, भारतीभूषणबुद्धर्, ज्ञानिगल्, देसिकगणतिलकर्, जैनसिद्धान्तचूडामणिगल्, श्रीपट्टणस्वामिगे गुरुगलेनल्…………'

इन वाक्योंसे दिवाकरनन्दी जैन सिद्धान्तके एक मर्मज्ञ प्रगाढ विद्वान् ही सिद्ध नहीं होते हैं; बल्कि गुणी, विशुद्ध चारित्रके धारक, जैनधर्मके पक्के श्रद्धालु तथा देशीगणके भूषणप्राय योगिश्रेष्ठ सिद्ध होते हैं।

शान्तिनाथ

ई. सन लगभग १०६८

इसने सुकुमारचरित लिखा है । यह बात सिकारिपुरके १३६ वें लेखसे भी विदित होती है । यह लेख शा. श. ९९० में (कीलक संवत्सरमें) लिखा गया था । कवि शान्तिनाथ भुवनैकमल्ल (ई. १०६८ – १०७६) का 'पसयित' लक्ष्म नृपका मंत्री था । इसका गुरु व्रती वर्धमान, पिता गोविंदराज, अग्रज कन्नपार्य, अनुज वाग्भूषण रेवण और स्वामी लक्ष्म नृप था । यह दण्डनाथप्रवर, परमजिनमताम्भोजिनी-

राजहंस, सरस्वतीमुखमुकुर, सहजकवि, चतुरकवि और निस्सहायकवि आदि विशेषणोंके द्वारा कहा गया है। यह एक प्रौढ कवि है। इसके उपदेशसे नृप लक्ष्यने बलिग्राममें शान्तितीर्थेश्वरके देवालयके लिये शिलान्यास किया था। सिकारिपुरके उक्त लेखमें शान्तिनाथकी बड़ी स्तुति की गई है। उनमेंसे कविस्तुतिपरक कुछ विशेषण नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

कविताचूतांकुरश्रीमदकलकलकण्ठोपम, काव्यसौधार्णववेलापूर्णचन्द्र, समविषममहाकाव्यवल्लीलतान्तोत्सवचंचच्चचरीक, दण्डनाथप्रवर, परमजिनमताम्भोजिनीराजहंस, सहजकवि, चतुरकवि, निस्सहायकवि, सुकवि, सुकरकवि, सुभगकवि, महाकवीन्द्र, सरस्वतीमुखमुकुर, सुजनसहाय, अर्थिप्रसरोत्कटदानाधिक, असदृश विभव, विशदयशोवल्लभ आदि।

शान्तिनाथका सुकुमारचरित चम्पू काव्य है। यह बारह आश्वासोंमें विभक्त है। काव्यमें सूरदत्त तथा यशोभद्राके पुत्र सुकुमारका चरित्र वर्णित है। यह यशोभद्राचार्यके उपदेशसे विरक्त हो उन्हींके निकट दीक्षाग्रहण करके अन्तमें मोक्ष गया है। प्रत्येक आश्वासके अन्तमें यह गद्य पाया जाता है—

'.........समस्तविनेयजनविनमितश्रीवर्धमानमुनीन्द्रवन्द्यपरमजिनेन्द्रश्रीपादपद्मवरप्रसादोत्पन्नसहजकवीश्वरश्रीशान्तिनाथप्रणीत....'

प्रो. टी. एस. शामराय मैसूरका कहना है शान्तिनाथकी कविता महाकवि रन्न पोन्न आदिकी कविताओंकी समकक्षाकी है। यह ग्रन्थ उक्त विद्वान्के द्वारा सम्पादित होकर कर्णाटक संघ शिवमोग्गसे यथाशीघ्र प्रकाशित होगा।

नागचन्द्र

ई. सन् लगभग ११००

खेदकी बात है कि इसने अपनी रचनाओंमें देश, काल और वंश आदिके सम्बन्धमें कुछ भी संकेत नहीं किया है। ऐसी दशामें— विशेष प्रमाणोंके अभावमें— इसका देश, काल और वंश आदिके बारेमें निश्चित रूपसे इस समय कुछ भी नहीं कहा जा सकता। रायबहादुर स्व. आर. नरसिंहाचार्य एम. ए. श्रीमान् दत्तात्रेय बेन्द्रे एम. ए. आदि कुछ विद्वानोंकी राय है कि विजयपुर अर्थात् वर्तमान बिजापुर नागचन्द्रका जन्मस्थान होना चाहिये। इसका कारण यह बतलाया गया है कि कविने स्वयं लिखा है कि विजयपुरमें श्री मल्लिनाथ जिनालयका निर्माण कराकर मैंने मल्लिनाथपुराणकी रचना की है।

परन्तु श्रीमान् गोविन्द पै मंजेश्वर इससे सहमत नहीं हैं। आप नागचन्द्रकी कृतियों (पंपरामायण तथा मल्लिनाथपुराण) के कतिपय पद्योंके आधारपर बनवासि या इसकी पश्चिम सीमापर अवस्थित समुद्रतीरवर्ती किसी स्थानको कविक जन्मस्थल अनुमान करते हैं *। महाकवि नागचन्द्रके सम्बन्धमें

---

* विशेष जानकारीके लिये ' अभिनव पंप ' में प्रकाशित आपका लेख देखें।

पैजीका कहना है कि ' कोई भी जनश्रुति निराधार नहीं होती है '। लोकोक्ति अगर यथार्थ है तो मानना पड़ेगा कियह नागचन्द्र अपनी पूर्वावस्थामें चालुक्य चक्रवर्तीके महामण्डलेश्वर होय्सळ विष्णुवर्धनकी राजधानी द्वारसमुद्रमें जाकर कुछ काल रहा और वहांपर इसने कवयित्री कान्तिको समस्याएं दीं। मल्लिनाथपुराण (आश्वास १, पद्य ५०) में प्रतिपादित ' जिनकथा ' को नागचन्द्रने प्रायः विष्णुवर्धन (ई. सन् १११०-१११५) के आस्थानमें ही रचा होगा। अपने पूर्ववर्ती महाकवि रन्न जिस प्रकार प्रथमतः सामन्तके, बाद महामण्डलेश्वरके, अन्तमें चालुक्य चक्रवर्तीके आस्थानमें पहुंच थे उसी प्रकार यह भी विष्णुवर्धनके आस्थानसे बिजापुर जाकर वहां चालुक्य युवराज मल्लिकार्जुनके आस्थानमें रहकर ई. सन् लगभग ११२० में इसने बिजापुरका शिलालेख लिखा होगा। कविके द्वारा बिजापुरके शिलालेखान्तर्गत पद्य ६ में प्रतिपादित मल्लिकार्जुनके प्रोत्साह या सहायतासे ही इसने विजयपुर अथवा बिजापुरमें मल्लिदेवके स्मृतिस्वरूप श्री मल्लि-जिनेंद्रका भव्य भवन बनवाया होगा। मल्लिजिनेंद्रनामांकित मल्लिनाथपुराणको भी नागचन्द्रने प्रायः वहींपर रचा होगा। परन्तु ग्रन्थ समाप्त होनेके पूर्व ही प्रायः मल्लिदेव स्वर्गासीन हो गया था। इसीलिए बाद उसके अनुज सोमेश्वर (तृतीय) के

आस्थानमें रहकर कविने उपर्युक्त मल्लिनाथपुराणको समाप्त किया होगा।

अपने मल्लिनाथपुराणान्तर्गत ' विजविभवोदर्थं समक-मायुतेने मल्लिजिनेंद्रगेहमं ' इस पद्यसे ज्ञात होता है कि कवि नागचन्द्र काफी सम्पन्न था। इसका अपर नाम अभिनव पंप था। इसके ग्रन्थोंसे पता लगता है कि कविको भारती कर्णपूर, कवितामनोहर, साहित्यविद्याधर, चतुरकविजनास्थान-रत्नप्रदीप, साहित्यसर्वज्ञ और सूक्तिमुक्तावन्तस ये उपाधियां प्राप्त थीं। नागचन्द्रके गुरु मुनि बालचन्द्र थे। पर इस नामके कई व्यक्ति हुए हैं। अतः इनमेंसे कविके गुरु मुनि बालचन्द्रको ढूंढ निकालना सहज काम नहीं है। मित्रवर श्रीमान् गोविन्द पै मंजेश्वरका मत है कि श्रवणबेल्गोलस्थ नं. १५८ वें शिलालेखमें अंकित बालचन्द्र ही नागचन्द्रके श्रद्धेय गुरु हैं। किन्तु इस लेखके बहुतसे अक्षर जहां तहां मिट गए हैं। इसलिये उससे मुनि बालचन्द्रसम्बन्धी विशेष बातोंका कुछ भी पता नहीं लगता। साथ ही साथ लेखमें लेखन-काल भी नहीं दिया गया है। कुछ भी हो, पैजीका कहना है कि, इसमें सन्देह नहीं है कि नागचन्द्रके द्वारा अपने मल्लिनाथपुराण (आश्वास १, पद्य २०) एवं

पंपरामायण (आश्वास १, पद्य १९) में स्तुत स्वगुरु, बालचन्द्र उपर्युक्त बालचन्द्र ही हैं × ।

कर्णपार्य (ई. सन् लगभग ११४०), दुर्गसिंह (ई. सन् लगभग ११४५), पार्श्व (ई. सन् १२०५) जन्न (ई.सन् १२०९), मधुर (ई.सन् लगभग १३८५), और मंगरस (ई. सन् १५०८), आदि मान्य कवियोंने नागचन्द्रकी स्तुति की है । नागवर्मा, केशिराज लक्षणग्रन्थकारोंने भी उदाहरणार्थ इसके ग्रन्थोंसे पद्य लिये हैं ।

जन्मस्थान आदिकी तरह कवि नागचन्द्रके कालके सम्बन्धमें भी विद्वानोंमें मतभेद है । कर्णाटक कविचरितेके विद्वान् लेखक श्रीमान् आर. नरसिंहाचार्य एम. ए. का अनुमान है कि नागचन्द्र ई. सन् लगभग ११०० में रहा होगा * । श्रीमान गोविन्द पै मंजेश्वरका कहना है कि कवि नागचन्द्रका जन्म ई. सन् लगभग १०९० में हुआ होगा । साथ साथ पैजीका यह भी अनुमान है कि मल्लिनाथपुराणके रचनाकालमें कविकी अवस्था ४० की और पंपरामायणके रचनाकालमें ५० की रही होगी ।

× विशेष जानकारीके लिए ' अभिनव पंप ' में प्रकाशित आपका लेख पढ़ें ।

* ' कर्णाटककविचरिते, ' भाग १, पृष्ठ ९९

इस हिसाबसे आप मल्लिनाथ पुराणका रचनाकाल ई. सन् ११३० से पूर्व और पंपरामायणका रचनाकाल ई. सन् ११४० अनुमान करते हैं ×। कविका जन्म कभी भी हुआ हो, पर उपर्युक्त दोनों विद्वानोंकी संयुक्त रायसे कवि नागचन्द्रका काल निस्संदेह ११ वीं शताब्दीके उत्तरार्धसे १२ वीं शताब्दीका पूर्वार्ध सम सिद्ध होता है। नागचन्द्रके इस कालनिर्णयमें अपने 'कवि-चरिते' में आर. नरसिंहाचार्यके द्वारा जो प्रमाण उपस्थित किये गए हैं, उनपर कुछ अन्य प्रमाणोंके साथ पैजीने विमर्शात्मक अपने विस्तृत लेखमें विस्तारसे विचार किया है। इसमें शक नहीं है कि महत्वपूर्ण इस लेखमें इस सम्बन्धमें पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

यद्यपि देवचन्द्र [ई. सन् १८३८] के मतसे जिन-मुनितनय, जिनाक्षरमाला आदि ग्रन्थ भी नागचन्द्रकी ही कृतियां हैं। पर जिनमुनितनयके साहित्यको देखते हुए इसे नागचन्द्रकी कृति माननेके लिए दिल कबूल नहीं करता है। क्योंकि नाग-चन्द्रकी रचनाओंसे इसे मिलान करनेपर बिल्कुल मेल नहीं खाता। मालूम होता है कि यह आधुनिक किसी सामान्य कविकी रचना है। आर. नरसिंहाचार्यको प्राप्त जिनमुनितनयकी ताडपत्रीय प्रतिके अन्तिम पद्यमें 'कविनूतननागचन्द्र' यह पद मौजूद था। इससे ज्ञात होता है कि जिनमुनितनयके रचयिताने अपना नाम 'अभिनव

× इसके लिए 'अभिनव पप' में प्रकाशित आपका लेख देखें।

नागचन्द्र' रख लिया था। परन्तु जिनमुनितनयकी मुद्रित प्रतिमें उपर्युक्त 'कविनूतनागचन्द्र' के स्थानपर 'कविविनुतनागचन्द्र' छपा हुआ है। मालूम होता है कि इसीसे यह ग्रन्थ नागचन्द्ररचित समझा गया है। अब रही जिनाक्षरमालाकी बात। इस नामका एक लघुकलेवर ग्रन्थ पं. एच. शेष अय्यंगार मद्रासके द्वारा सम्पादित होकर जो प्रकाशित हो चुका है, उसका रचयिता तो महाकवि पोन्न है। सम्भव है कि इससे भिन्न इसी नामका दूसरा ग्रन्थ नागचन्द्रके द्वारा रचा गया हो।

नागचन्द्रके उपलब्ध दो ग्रन्थोंमेसे पहला 'मल्लिनाथपुराण' और दूसरा 'पंपरामायण' या 'रामचन्द्रचरितपुराण' है। श्रीमान् गोविंद पै, दत्तात्रेय बेंद्रे आदि विद्वानोंकी राय है कि इनमेंसे पहले मल्लिनाथपुराण और बाद पंपरामायण रचा गया था। पहले ग्रन्थमे गद्य-पद्य मिलाकर २०३१ और दूसरेमें केवल पद्य ही २३४३ है। दोनोंका बन्ध बहुत ही ललित एवं मनोहर है। दोनों ग्रन्थोंके आश्वासोंके अन्तमें यह गद्य मिलता है—

' ..... परमाजिनसमयकुमुदिनीशरच्चन्द्रबालचन्द्रमुनीन्द्रचरणनखकिरणचन्द्रिकाचकोरं भारतीकर्णपूर श्रीमदभिनवपपाविरचित .... '

मल्लिनाथपुराणकी कथा छोटी है। ग्रन्थका काय केवल रसपुष्टि एवं वर्णनोंके कारण ही बढ गया है। यहापर कल्पनास्वातन्त्र्यके लिये काफी गुंजाइश भी थी। पंपरामायण बड़ा है। बल्कि इसमें पात्रोंकी रचना बहुत सुन्दर हुई है। साथ ही साथ ग्रन्थमें लोकानुभवका पुट यथेष्ट दिया गया है। नागचन्द्रने मल्लि-

नाथपुराणसे एक दो नहीं, महत्वपूर्ण सैकड़ो सुंदर पद्योंको पंप-रामायणमें लिया है। कवि आगम, अध्यात्म, अर्थशास्त्र और साहित्य आदि सभी विषयोंपर निष्णात था। इसके श्रद्धेय गुरु मुनि बाल-चन्द्र भी सकलगुणसम्पन्न महाविद्वानोंमेंसे थे। इसलिये शिष्य नागचन्द्रका तदनुरूप होना सर्वथा स्वाभाविक है। कवि शांत-रसको अधिक पसन्द करता था। इसलिये इसकी दोनों कृतियां शान्तरसप्रधान हैं। इसमें निश्रेयस पद-प्राप्तिकी लालसाके साथ साथ गुरुका प्रभाव भी मुख्य हेतु हो सकता है। गुरुपर नागचन्द्रको असीम भक्ति थी। इसमें शक नहीं है कि कविके तनु, मन और वन ये तीनों जिनेन्द्रसेवाके लिये ही अर्पित थे। इसीलिये जिना-र्चना और जिनगुणवर्णनके साथ साथ इसने विजयपुरमें मल्लिनाथ जिनालयका निर्माण कराकर अपने वैभवको सफल बनाया था। परमजिनभक्त, आचार्य पादपद्मोपजीवी, नागचन्द्र अपने निर्दोष वचन (काव्य) एवं आचरणके द्वारा वस्तुत. अमर रहेगा। श्रीमान बेंद्रेका अनुमान है कि महाकवि होनेके पूर्व नागचन्द्रको शासन-कविके रूपमें जानपद सम्मान प्राप्त करनेका सौभाग्य भी प्राप्त था। क्योंकि बिजापुरके शासनमें ही नहीं, श्रवणबेल्गोलके कई शासनों (शिलालेखों) में इसके बहुतसे पद्य वर्तमान हैं।

इसमें तिलमात्र भी संदेह नहीं है कि जैन कवियोंने ही शान्तरसको पूर्णरूपसे अपनाया। काव्याध्ययनका फल रागद्वेषोंका प्रचोदन नहीं है। प्रत्युत अनन्तसुखकी जडरूप दर्शनविशुद्धिकी

प्राप्ति है। कवियोंसे हम चक्रवर्तीके असीम वैभवका वर्णन या देवेंद्रके स्वर्गीय सुखका वर्णन नहीं चाहते हैं। क्योंकि ये सब नश्वर हैं। हम चाहते हैं कि अक्षय सुखको पानेका सुगम एवं निष्कण्टक उपाय बतलानेवाले महापुरुषोंकी सफल जीवनीको सुनाकर हृदयको सकम्प एवं द्रवीभूत करके उसीमें तल्लीन करनेवाले प्रतिभापुञ्ज महाकवियोंको। यह गुण महाकवि नाग-चन्द्रमें मौजूद था।

वर्णनीय चरित्र एक ही जन्मका हो या अनेक जन्मोंका अगर कवि उसमें एक क्रम निर्धारित करनेमें समर्थ होता है तो वस्तुतः उसकी प्रतिभा प्रशस्त है। इसमें संदेह नहीं है कि नाग-चन्द्रने मल्लिनाथके उभय जन्मोंके पावन चरित्रको बडी ही बुद्धि-मत्तासे एक महाजन्मके पूर्वोत्तर रूपमें विभक्त किया है। इसमें उत्तर जन्मसंबंधी मधुर फलोंके सूक्ष्म बीज पूर्वजन्मके चरित्रमें स्पष्ट झलकते हैं। उक्त इस काव्यके वर्णनोंमें यथार्थतः कथावस्तुमें एक अपूर्वता लाये हैं। इसमें शक नहीं है कि कविका रचनाकौशल्य सर्वथा प्रशंसनीय है। एक बात और है कि नागचन्द्रने अपने मल्लि-नाथपुराणमें महाकवि पंपप्रोक्त (१) भुवन, (२) देश, (३) पुर, (४) राजवृत्त, (५) अर्हद्विभव, (६) चतुर्गति, (७) तपोमार्ग, (८) फल इन आठ कथांगों × को ही सहर्ष अपनाया है।

× 'मल्लिनाथपुराण', आश्वास १ पद्य ५४

श्रीमान् बेंद्रेके शब्दोंमें मल्लिनाथपुराणके २०३१ गद्य-पद्यों-मेंसे लगभग १३५० गद्य-पद्य देश, पुर और राजवृत्त आदिके वर्णनके लिये ही व्यय किये गए हैं। सामान्य जनतासे परिचित जीवनको ही कविने विस्तारसे बहुत ही चित्ताकर्षक ढगसे सुन्दर चित्रित किया है। इसमें मानवसुखकी परमावधिके साथ ही साथ जैनेंद्रपदकी सर्वोत्कृष्टता भी सविशद दिखलाई गई है। नागचन्द्र अर्थान्तरन्यासका अधिक प्रेमी था। फलस्वरूप मल्लिनाथपुराणमें इसकी बहुलता अवश्य द्रष्टव्य है।

अब पंपरामायणको लीजिये। यह एक सरस महाकाव्य है। इसका आदर्श ईसाकी ७ वीं शताब्दीमें आचार्य रविषेणके द्वारा रचित संस्कृत पद्मपुराण है। संस्कृत पद्मपुराणका आदर्श ई. सन प्रथम शताद्वीमें विमलाचार्यके द्वारा रचित प्राकृत 'पउमचरियम्' है। अनादिकालसे जिनेश्वर, गणेश्वर आदिके द्वारा परम्परागत श्री रामचरित ही इस पंपरामायणका प्रतिपाद्य विषय है। इसमें नायक रामचन्द्रके चरित्रके अंगस्वरूप वासुदेव, लक्ष्मण, प्रतिवासुदेव रावणका चरित्र, चक्रवर्ती, गणधर, चतुर्गति, कुलंकर लोकस्वरूप और कालस्वरूप आदि विषय भी विस्तारसे वर्णित हैं ×। रामचन्द्र, लक्ष्मण, रावण, सीता, नारद, हनुमान, वाली तथा सुग्रीव पंपरामायणके प्रधान व्यक्ति हैं। जिनका अन्तिम लक्ष्य

× पंपरामायण, आश्वास १, पद्य ४१,

मोक्ष है । मोक्षका साधन तपस्या है । तपस्यामें प्रवृत्ति विरक्तिके द्वारा ही होती है । इसमें पाठकोंको इस विरक्तिका अपूर्व दृश्य सर्वत्र देखनेको मिलेगा । इसी प्रकार जन्मान्तरकी कथाओंका मनोहर दृश्य भी । महावैभवशाली बडे २ राजा महाराजा भी सहज सामान्यसे सामान्य निमित्त पाकर संसारमें विरक्त हो, आत्महितार्थ कठिनसे कठिन तपस्या करनेकी अद्‌भुत घटनाएं पंपरामायणमें प्रचुर परिमाणमें मिलती है । यहापर वाल्मीकीय रामायण एवं पंपरामायणमें पाये जानेवाले कुछ प्रमुख भेदोंका भी उल्लेख कर दिया जाता है ।

पंपरामायणमे रामकी माता अपराजिता और शत्रुघ्नकी माता सुप्रभा बतायी गई है । सुमित्राके लक्ष्मण एक ही पुत्र था । इसमें विश्वामित्रकी चर्चा ही नही है । सुग्रीव, वाली आदि बदर नहीं थे, किंतु कपिध्वज थे । बल्कि रावणसे इनका सम्बन्ध भी था । वरुणके युद्धमें हनुमानने रावणकी सहायता की थी । शम्बूक शूद्र न होकर रावणकी बहन चन्द्रनखाका लडका था । सूर्यहास खड्‌गके लिये तपस्या करते हुए भ्रमसे लक्ष्मणने इसे मारा था, जो रावण द्वारा सीतापहरणका एक मात्र कारण बन गया । रामका वर्ण गौर और लक्ष्मणका श्याम था । लक्ष्मणने ही रावणको मारा, रामने नहीं । राम उसी भवसे मोक्ष गया है । सीताको प्रभामण्डल नामक एक भाई भी था । पंपरामायणमें सीता राम-रावण युद्धके बाद अयोध्या जानेके पूर्व अग्निप्रवेश न करके लवांकुशके जन्मके बाद

ही करती है। बल्कि अग्निप्रवेशके बाद विरक्त हो वह जिनदीक्षा ही ले लेती है। विरक्तिका कारण एकमात्र उसपर लगाया गया मिथ्याकलंक था।

लक्ष्मणका अटूट भ्रातृप्रेम; सीताका असीम पतिप्रेम; वैभवशाली, प्रतापी, सद्वंशी और सुरूपी होनेपर भी परदाराभिलाषी रावणका सीताके द्वारा तिरस्कार; अहिंसादि व्रतोंका चित्ताकर्षक ढंगसे किया गया वर्णन; वानर हाथी आदि पशुओंका भी धर्मपर अटूट प्रेम, मुनि, आर्यिका आदि त्यागी तपस्वियोंके आदर्श आचरणका सजीव वर्णन आदि पंपरामायणके ये सभी विषय सामान्य जनतापर भी अपना गहरा प्रभाव डालते हैं।

पंपरामायणान्तर्गत रावणकी जीवनघटनाओंमें विज्ञ पाठक रावणके मानवोचित दया, क्षमा, सौजन्य, गाम्भीर्य एवं औदार्य आदि महान् गुणोंको देखेंगे। जैन रामायण ही नहीं, आदि कवि वाल्मीकिने भी अपनी रामायणमें कई स्थानोंमें रावणको महात्मा शब्दसे अंकित किया ही है ×। आखिर वह भी सत्यका गला कैसे घोंट सकते थे। इतना ही नहीं, वाल्मीकि रामायणसे यह भी सिद्ध होता है कि रावणकी राजधानीमें घर घर वेदपाठी विद्यमान थे। साथ ही साथ प्रत्येक घरपर हवनकुण्ड भी। धर्मात्मा रावणके महलोंमें कभी कोई नीच कार्य नहीं किया जाता था। उनमें सदा वेदप्रतिपादित शुभकार्य ही किये जाते थे। इसीलिये उस

× सुंदरकाण्ड, सर्ग ५, १०, ११

पुण्यात्मा रावणके घरोंको देवता पूजते थे = । जैन सिद्धांत-भवन आरासे प्रकाशित होनेवाले 'जैन सिद्धात भास्कर' में 'जैन रामायणका रावण' इस शीर्षकपर इस सम्बन्धमें मैंने एक विस्तृत लेख लिखा है । विशेष जाननेकी इच्छा रखनेवाले सहृदय पाठक उक्त लेखको एक बार अवश्य देखें ✎ । पंपरामायणके निम्नलिखित प्रकरणोंका वर्णन विशेष उल्लेखनीय है—

(१) स्वयंवरके उपरात सीताको देखनेके कुतूहलसे गुप्तरूप में मुनि नारद आकाशमार्गसे मिथिला आते हैं । वहापर अवसर पाकर वे इस कार्यके लिये अंतःपुरमें प्रवेश करते हैं । छिपकर अपनेको देखनेवाले नारदको अचानक सीता देख लेती है, और उनके विचित्र रूपसे भयभीत हो जोरसे चिल्ला उठती है । इस दयनीय आवाजको सुनकर अंतःपुरकी रक्षिकाए दौड पड़ती है । तबतक नारद अपने अनुचित व्यवहारके लिये स्वय लज्जित हो वहांसे वापिस दौडने लगते हैं । यह वर्णन स्वाभाविक, सुंदर एवं बहुत हृदयग्राही है । बल्कि इसका अनुभव एक भुक्तभोगी ही कर सकता है । इस वर्णनमें सत्य सौन्दर्य एवं चातुर्य आदि सब कुछ अन्तर्हित है * ।

= सुंदरकाण्ड, सर्ग ६ तथा १८

✎ 'जैनसिद्धात-भास्कर' भाग ६, किरण १

* 'पंपरामायण' आश्वास ४, पद्य ८०-८८

(२) मालूम होता है कि नागचन्द्र बदमाश घोडोंकी चालसे अच्छीतरह परिचित था। साथ ही साथ ऐसे घोडोंपर चढना वह अधिक पसन्द करता था। इसलिये एतज्जन्य कविका अनुभव सर्वथा श्लाघनीय है ≡ ।

(३) सीताका पतिवियोगजन्य तथा रामका पत्नीवियोग-जन्य असीम दुःख पपरामायणमें बहुत ही हृदयविदारक ढंगसे वर्णित है। इस वर्णनको पढनेसे वस्तुतः भावुक पाठकोंके नेत्र भर आते हैं और मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र एवं पतिव्रताशिरोमणि माता सीताके प्रति सहानुभूति पैदा होती है × ।

(४) इसी प्रकार कविके मल्लिनाथपुराणान्तर्गत वसन्तो-त्सवका वर्णन भी सर्वथा पठनीय है। इस वर्णनमें खास कर आम्र-वृक्ष-मल्लिकालताओंका विवाहवर्णन एक कुतूहलोत्पादक वस्तु है = ।

अब नागचन्द्रकी शैलीको लीजिये। इसकी शैली अपनी ही एक अपूर्व एवं विशिष्ट शैली है। कविका वर्णनीय विषय कितना ही गहन हो, पर उसमें कहीं भी अवरोध नहीं है। जिन

≡ 'पंपरामायण' आश्वास ४, पद्य १०५, १०६, १०८, १११, ११२, ११४, ११८ और १२०.

× 'पपरामायण' आश्वास ७, पद्य, १०७, १११, ११३, ११६ ११७ और ११८।

= 'मल्लिनाथपुराण' आश्वास ६, पद्य ४०, ४३, ४४, ४५ और ४६

वर्णन, पुरवर्णन, प्रकृतिवर्णन आदि सबोंमें नागचन्द्र सिद्धहस्त था। अपेक्षित शब्द अहमहंपूर्विकया सहसा आ जाते हैं । वर्णनीय वस्तुओंको स्पष्ट देखनेकी एक अलौकिक शक्ति कविमें थी।

नागचन्द्र एक रसिक कवि था । साथ ही साथ इसमें अगाध पाण्डित्य भी मौजूद था। कृतियोंमें सर्वत्र कविकी अनुप्रास प्रियता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। बल्कि यमकसे इसका सौंदर्य और बढ गया है। सारांशतः नागचन्द्रके ग्रन्थोंमें अनुनासिक, दन्त्य और अनुस्वारके आधिक्यसे प्राप्त सौंदर्य वस्तुतः दर्शनीय है। हां, इसके काव्योंमें विद्वानोंकी दृष्टिमें कुछ दोष भी अवश्य हैं । जैसे श्लेष, विरोधाभास और अर्थान्तरन्यासकी बहुलता आदि । कुछ भी हो, यह तो निर्विवाद है कि नागचन्द्रकी शैली सुन्दर सरल तथा हृदयग्राही है।

कन्ति

ई. सन्. लगभग ११००

अभीतक इसका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं मिला है । हां, 'कान्तिपंपन समस्येगळु' इस नामसे इसके कुछ फुटकर पद्य अवश्य मिले हैं। द्वारसमुद्रके बल्लाळरायकी सभामें महाकवि अभिनव पंपके द्वारा दी गई कुछ समस्याओंकी पूर्ति इसने जो की थी वही [समस्या तथा उसकी पूर्ति] उपर्युक्त संग्रहमें संगृहीत हैं। कवि बाहुबली [ई. सन् लगभग १५६०] ने अपने 'नागकुमारचरित'

में दोर [बल्लाल] सभाकी मंगल-लक्ष्मी, शुभगुणचरिता, अभिनव-वाग्देवी आदि सुंदर विशेषणोंके द्वारा इसकी स्तुति की है। इससे ज्ञात होता है कि कान्ति द्वारसमुद्रके बल्लालरायकी सभामें वर्तमान थी। उपर्युक्त विशेषणोंमें 'अभिनववाग्देवी' इसकी उपाधि मालूम होती है। इस कवयित्रीके बारेमें देवचन्द्रने अपनी 'राजावलिकथे' में निम्न प्रकार लिखा है—

'दोरराय' दोरसमुद्र नामक एक विशाल जलाशयको निर्माण कराकर धर्मचन्द्र नामक ब्राह्मणको अपना मंत्री नियुक्त करके सुचारु रूपसे वहाका राज्यशासन करता रहा। मंत्रिपुत्र स्वयं उपाध्यायका कार्य सम्हालता हुआ बालकोंको छन्द अलंकार, व्याकरण और काव्य आदि सभी विषयोंको पढाया करता था। वह मन्दबुद्धिवाले बालकोंके मतिप्रकाशनार्थ ज्योतिष्मती + नामक बुद्धिवर्धक एक विशिष्ट तैल तैयार करके उसमेंसे बालकोंको अर्ध-बिंदुके परिमाणसे दिया करता था। तैलके सेवनविधिसे अनभिज्ञ कंतिने प्रायः अधिक लाभकी आशासे एकदिन गुरुजीकी अनुपस्थितिमें पात्रस्थ कुल तैलको एक ही बार पी डाला। फलतः औषधजन्य असह्य गर्मीको न सहन कर वह तुरन्त दौड कर कुएंमें कूद पडी।

+ ब्राह्मीवचाकुष्टकणाभयाना छिन्नोद्भवावासकमूलचूर्णम्।
ज्योतिष्मतीतैलसमानलीढं कुर्यात्कवित्वग्रहणेऽपि सत्त्वम्॥

वहांपर कण्ठप्रमाण जलमें अधिक समयतक रहनेपर जब तेलकी गर्मी कम हुई तब कांति कुएंमें ही खडी हो सुन्दर कविताएं बनाने लगी। इस अपूर्व घटनासे सभी आश्चर्यमें पड गए। यह विचित्र समाचार तुरन्त दोररायके आस्थानमें भी पहुच गया। इस बातका प्रकृत पता लगानेके लिये राजा दोरने अपने आस्थानके ख्यातिप्राप्त महाकवि अभिनवपंपको ही भेजा। उभयभाषाकवि पंपने घटनास्थलपर पहुचकर कान्तिसे एक दो नहीं, सैकडों प्रश्न किये। पर कवयित्री कांतिने सभी प्रश्नोंका समुचित उत्तर देकर परीक्षादक्ष महाकविको पूर्ण प्रसन्न कर दिया। बाद महाकवि पंपने इसे राजदरबारमें पहुंचाया। दरबारमें दोरने भी इसकी अलौकिक कविताशक्तिसे प्रसन्न होकर कांतिको अपने आस्थानकी कवीश्वरी घोषित किया और इसे सम्मानपूर्वक अपने यहां रखा।

बहुत कुछ सम्भव है कि इसकी 'अभिनववाग्देवी' यह उपाधि बल्लालराय दोरके द्वारा ही दी गई हो। अभिनव पंपने जब इसके लिए समस्याएं दी थीं, यह उसीका समकालीन सिद्ध होती है। श्रीमान् आर. नरसिंहाचार्यके मतसे पंपका समय ई. सन् लगभग ११०० है। उपर्युक्त दोर भी द्वारसमुद्रका तत्कालीन शासक बल्लाल [ई. सन ११००–११०६] ही होना चाहिये। माळूम होता है कि बल्लालकी सभामें पंप, कांति आदि सुकवि विद्यमान थे।

आजतकके अन्वेषणसे कन्नड कवयित्रियोंमें कंति ही प्रथम कवयित्री है। कुछ फुटकर उल्लेखोंसे पता लगता है कि महाकवि पंप और कंतिमें बराबर संवाद चलता रहा। साथ ही साथ उन उल्लेखोंसे भी ज्ञात होता है किसी प्रसंगमें एक रोज पंपने कंतिसे यह प्रण किया कि किसी दिन मैं तुमसे अपनी स्तुति अवश्य करा लूंगा। इस जटिल समस्याको हल करनेके लिये महाकवि पंपने एक रोज कवयित्री कंतिके पास अपनी मृत्युकी ई. खबर भेज दी। इस दुःखद अशुभ समाचारसे कंति बहुत दुःखी हुई और दौडी दौडी पंपके घर पहुंची। घरपर प्रवेश करनेके साथ ही वह 'कविराय कविपितामह कविकण्ठाभरण कविशिखामणि''' आदि पद्योंके द्वारा मुक्तकण्ठसे महाकवि पंपकी प्रशंसा करने लगी। तब पंप बाहर आया और प्रसन्न होकर कंतिसे कहा कि आज मेरा वह पूर्व प्रण पूरा हुआ। कंति भी महाकविको सामने पाकर बडी प्रसन्न हुई।

'कंतिपंपन समस्येगळु' इस नामके पद्य जो इस समय उपलब्ध होते हैं वे साहित्यकी दृष्टिसे भी सुंदर हैं। यहापर उनमेंसे उदाहरणार्थ सिर्फ एक पद्य जो कि निरोष्ठ्य काव्यका उदाहरण स्वरूप है, नीचे उद्धृत किया जाता है—

'सुरनरनागाधीशर- । हीराकिरीटाग्रलग्नचरणसरोजा ।
धीरोदारचरित्रो- । त्सारितकलुषौघ रक्षिसल्कारिनिर्हा ॥'

बस, कंतिके सम्बन्धमें इससे अधिक कुछ भी नहीं मिलता है। इसलिये इस समय इतनेसे ही सन्तुष्ट होना पडता है।

नयसेन

ई. सन् ११११२

इसने धर्मामृतकी रचना की है। नागवर्मा (ई. सन् लगभग ११४५) ने अपने 'भाषाभूषण' के 'दीर्घोक्तिर्नयसेनस्य' इस सूत्र [७२] में नयसेनके मतानुसार सम्बोधनमें दीर्घको स्वीकार किया है। इससे सिद्ध होता है कि इसने एक कन्नड व्याकरण भी लिखा था। पर अभीतक उसका पता नहीं चला है। कविकी उपलब्ध कृतियोंमें उपर्युक्त धर्मामृत एक ही है। नयसेनने इस धर्मामृतको मुलगुंद × में रचा था। 'गिरिशिखिवायुमार्गशशिसंख्ये ' धर्मामृतके इस असमग्र पद्यके आधारपर श्रीमान् आर. नरसिंहाचार्यने अपने 'कविचरिते' में इस ग्रन्थका रचनाकाल शा. श. १०३७ बतलाया है। पर इसपर उन्हें एक शंका है। वह यह है कि उक्त पद्यके उत्तरार्धमें पाया हुआ नन्दन संवत्सर शक १०३७ में न आकर १०३४ में आता है। इससे वे अनुमान करते हैं कि जैन मतावलम्बी प्रायः गिरि शब्दसे ४ का अंक लेते हैं और यदि मेरा यह अनुमान ठीक है तो धर्मामृत ई. सन् ११११२ में रचा गया था।

परन्तु मेरे जानते हुए गिरि शब्दसे चारका अर्थ लेना जैन धर्मको भी मान्य नहीं है। इसलिये उपर्युक्त अंतरका कारण और

× यह वर्तमान धारवाड जिलेमें है।

ही कुछ होना चाहिये। इस कारणको ढूंढ निकालना परमावश्यक है। आश्वासके आद्यन्त पद्योंसे मालूम होता है कि नयसेनको 'सुकविनिकरपिकमाकन्द' 'सुकविजनमनःपद्मिनीराजहंस' ये उपाधियां प्राप्त थीं। बल्कि आश्वासोंके अन्तके गद्योंमें इसने अपनेको दिगम्बरदास, नूतनकवितावि‍लास भी बतलाया है = । श्रीमान् स्व. डा. शामशास्त्री तथा जी. वेंकटसुब्बय्य एम्. ए. के मतसे 'वात्सल्यरत्नाकर' और 'नूतनकवितावि‍लास' ये भी कविकी उपाधिया ही रहीं * । बल्कि वेंकटसुब्बय्यका यह भी कहना है नयसेनने अपना वंश, मातापिता और आश्रयदाता आदिके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा है। इसी प्रकार श्रीमान नरसिंहाचार्यका कहना है कि इसने अपने गुरुका स्मरण तो अवश्य किया है। पर स्पष्ट नाम लेकर नहीं; किंतु त्रैविद्यचूडामणि, त्रैविद्यचक्रेश्वर, त्रैविद्यलक्ष्मीपति और त्रैविद्यचक्राधिप आदि शब्दोंके द्वारा ही + ।

कविने अपने धर्मामृतमें अपना वंश, मातापिता और आश्रय दाता आदिका नाम इसलिये नहीं लिया होगा कि धर्मामृतके रचनाकालमें यह मुनि हो गया था। क्योंकि इसने अपनी कृतिमें नयसेनदेव, नयसेनमुनीन्द्र आदि शब्दोंके द्वारा अपनेको स्पष्ट मुनि सूचित किया है। बल्कि नयसेन यह नाम मुनियोंका है, न कि

= 'कर्णाटककविचरिते' भाग १, पृष्ठ ११८.

* 'नयसेन' पृष्ठ ६, तथा धर्मामृत [उत्तरार्ध] की प्रस्तावना

+ 'कर्णाटककविचरिते' भाग १, पृष्ठ ११८.

गृहस्थोंका। इस मुनि अवस्थामें कवि अपना पूर्व वंश, मातापिता और आश्रयदाता आदिके बारेमें कुछ भी नहीं लिख सकता था। हां, अपनी गुरुपरम्पराके विषयमें यह बहुत कुछ लिख सकता था। पता नहीं चलता है कि इसके इस मौनका क्या कारण है। फिर भी धर्मामृतके 'गुरुविद्याविद्यनरेन्द्रसेनमुनिप' इस पद्यने त्रैविद्यचक्रेश्वर मुनि नरेन्द्रसेनको इसने अपना गुरु सूचित किया है। नामसे गुरु नरेन्द्रसेन तथा शिष्य नयसेन ये दोनों दिगम्बर आम्नायके सुप्रसिद्ध सेनगणीय मुनि सिद्ध होते हैं जिसमें प्रातःस्मरणीय आचार्य वीरसेन जिनसेन और गुणभद्र आदि महान् आचार्य हो चुके हैं। इस सिलसिलेमें एक बात और रह जाती है। वह यह है कि नयसेनने अपने धर्मामृतको मुलुगुंदमें अपनी मुनि अवस्थामें जब रचा है उक्त मुलुगुंदको कविका जन्मस्थान मानना ठीक नहीं होगा ×। क्योंकि दिगम्बर मुनि किसी एक ही स्थानपर दीर्घकालतक नहीं ठहर सकते हैं। चातुर्मासको छोडकर वे सदैव विहार करते रहते हैं। सिर्फ चातुर्मासमें उसकी समाप्तितक एक स्थानपर अवश्य ठहरते हैं। ऐसी अवस्थामें मुनि नयसेन मुलुगुंदका निवासी नहीं रहा होगा, किंतु वहांका प्रवासी। हां, धर्मामृतकी समाप्ति इसने मुलुगुंदमें ही की थी। अर्थात् उपर्युक्त ग्रंथके समाप्तिकालमें नयसेन मुलुगुंदमें अवश्य रहा।

× आर. नरसिंहाचार्य आदि विद्वानोंने इसी स्थानको कविका जन्मस्थल अनुमान किया है।

यद्यपि नयसेनके पूर्व ही कन्नड साहित्यमें कथासाहित्यका जन्म हो चुका था। इसके लिये 'वड्डाराधना' ही प्रबल साक्षी है। हां, वड्डाराधनाके बाद नयसेनके कालतकका दूसरा कोई इस प्रकारका कथाग्रन्थ कन्नड साहित्यमें अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ है। इसी दृष्टिसे जी. वेंकटसुब्बय्यकी राय है कि जनसामान्यकी साहित्यरचनामें नयसेन ही पथप्रदर्शक रहा। इसमें संदेह नहीं है कि नयसेन इस बातको अच्छी तरह जानता था कि मतप्रचारार्थ इस प्रकारकी कथाएं अधिक उपयोगी हैं। यह है भी ठीक। क्योंकि प्रत्येक मानव जन्मसे ही कथा सुननेका आदी होता है। बूढ़ी नानीकी विचित्र कथाओंसे ही बच्चोंका विद्याभ्यास आरम्भ होता है। बच्चोंको कथा सुनानेमें नानीको भी कम दिलचस्पी नहीं होती है। इस प्रकार जैसे जैसे कथा सुनने और सुनानेकी अभिरुचि बढ़ती है वैसे वैसे ही कथासाहित्यका भाण्डार भी भरता जाता है। कन्नडमें कथासाहित्यका जन्म कब हुआ यह कहना कठिन है। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कन्नडके अन्यान्य अंगोंकी तरह कथासाहित्यके जन्मदाता भी जैन कवि ही हैं। कन्नड कथासाहित्यके आजतकके उपलब्ध ग्रन्थोंमें जैन ग्रंथ वड्डाराधना ही सर्व प्राचीन ग्रन्थ है।

जी. वेंकटसुब्बय्यके इस अभिप्रायको मैं भी स्वीकार करता हूं कि प्रारम्भमें कन्नड कवियोंने पुराणोंमें संस्कृत महाकाव्योंकी ही शैलीको अपना कर अपने ग्रन्थोंको पामररंजक न बनाकर पण्डितरंजक बनाया। दीर्घ समास, श्लेष आदि क्लिष्ट अलंकार, अष्टादश

वर्णन, कठिन भाषा और धर्मको प्रतिपादित करनेवाली प्रौढ शैली आदिके कारण ये पुराण सामान्य जनताके कुतूहलको तृप्त नहीं कर सके। इस विचारको मनमें लानेके लिये कवियोंको पर्याप्त काल लग गया। प्रायः कवियोंने १२ वीं शताब्दीके आदि भागमें इस ओर लक्ष्य दिया। यही कारण है कि इसका सारा श्रेय नयसेनको दिया गया है। डा, जी. वेंकटसुब्बय्यकी इस रायसे मैं सहमत नहीं हूं कि जैनोंका सारा कथासाहित्य वैदिक और बौद्ध कथासाहित्यका रूपांतर है। इस समय मैं उनसे इतना ही निवेदन करना चाहता हूं कि निष्पक्ष दृष्टिसे सारे कथासाहित्यको आप एक बार और बारीकीसे अध्ययन कर डालें। किसी भी विषयमें अपना मत दे देना आसान है। पर वह बिलकुल नापा तुला हुआ प्रामाणिक होना चाहिये।

अस्तु. नयसेनको संस्कृतके दीर्घसमासोंको ली हुई कन्नडकी वह पुरानी प्रौढशैली पसन्द नहीं थी। इसीलिये इसने अपने एक पद्यमें ऐसे पुराने कवियोंका खुले शब्दोंमें मजाक किया है। कविका कहना है कि संस्कृतमें लिखो या शुद्ध कन्नडमें। संस्कृतके दीर्घ-समासोंको देकर शैलीको गहन मत बनाओ। इससे मिला हुआ तैल और घी की तरह दोनोंमें कोई भी भोगयोग्य नहीं होता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि नयसेन कन्नडमें संस्कृत शब्दोंको एकांततः नहीं चाहता था। इस बातको निषेध करनेवाले पद्यमें ही तैल तथा घृत इन संस्कृत शब्दोंका प्रयोग इसने स्वयं किया

है । कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि संस्कृतके सुलभ शब्दोंका कन्नडमें लेनेसे कोई हानि नहीं है । हां, कठिन शब्दोंके प्रयोगसे कविका आशयको जाननेमें बडी दिक्कत होती है । इसमें संदेह नहीं है कि कोई भी ग्रन्थ हो, सुलभ शैलीमें लिखे जानेपर ही वह सर्वादरणीय हो सकता है ।

अब नयसेनकी कृति धर्मामृतको लीजिये । इसमें कुल १४ आश्वास है । इन आश्वासोंमें क्रमशः सम्यग्दर्शन, उसके आठ अंग तथा अहिंसा आदि पांच अणुव्रतोंका निरतिचार अनुष्ठान करके सद्गतिको प्राप्त करनेवाले महात्माओंकी पवित्र कथाएं सुन्दर ढंगसे चित्रित हैं । ग्रन्थकी शैली सरल है । यह है भी स्वभाविक । क्योंकि कवि सरलशैलीका ही पक्षपाती था । ग्रंथमें कद और प्रसिद्ध वृत्त ही अधिक हैं, अप्रसिद्ध वृत्त बहुत कम । खास कर नयसेनकी शैलीका वैलक्षण्य इसके गद्यमें ही दृष्टिगोचर होता है । कन्नडचम्पू ग्रन्थोंमें आनेवाले गद्य अधिक मात्रामें कादम्बरी, हर्ष-चरित आदिकी शैलीके हैं । पर इस शैलीमें और नयसेनकी शैलीमें बहुत अंतर है । नयसेनकी शैलीमे खोजनेपर भी प्राचीन कविप्रिय परिसंख्या, विरोधाभास, श्लेष, और अत्युक्ति आदि अलंकार नहीं मिलते है । कहीं भी देखें, सर्वत्र उपमा, मालोपमा, प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्तिके अनुभवमें आनेवाले प्रापंचिक दृश्योंका सादृश्य, सब किसीके व्यवहारमें आनेवाली लोकोक्तियां आदि ही उपलब्ध होती हैं । इसीलिये पण्डितोंको प्रायः यह ग्रन्थ अचमत्कारिक, नीरस प्रतीत हो सकता है । परन्तु

सामान्य जनता इसी तरहके ग्रन्थोंको अधिक पसन्द करती है। काव्यके चमत्कारविशेष, अलंकारवैचित्र्य आदि उसे रुचिकर नहीं होते हैं।

कन्नड शब्दोंके प्रयोगमें भी नयसेनने व्याकरण एवं पूर्व-कवियोंको सामने रखकर शुद्ध प्राचीन कन्नडको ही नहीं अपनाया है। प्रत्युत अपने कालकी नवीन कन्नडमें ही ग्रन्थ रचनेकी इसने प्रतिज्ञा की है। हर्षकी बात है कि कविने अपनी इस प्रतिज्ञाको अंततक निभाया है। हां, प्रतिज्ञानुसार धर्मामृतमें सिर्फ तत्कालीन कन्नड ही नहीं, इसके साथ साथ मध्यकालीन कन्नड भी अवश्य उपलब्ध होती है।

जैनोंके अनुयोगचतुष्टयान्तर्गत प्रथमानुयोग संबंधी पुराण काव्य तथा चरित्र आदि ग्रन्थोंका एक मात्र आशय मानवको कदाचारसे हटाकर सदाचारमें लगाना है। इसलिये इस अनुयोगसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक ग्रन्थमें पाठकोंको हिंसा, असत्य आदि पापरूप कदाचारसे होनेवाली हानि या अनर्थ तथा उनके त्याग-रूप अहिंसा आदि पुण्यस्वरूप सदाचारसे प्राप्त होनेवाला समीचीन फल सुंदर ढंगसे दर्शाया गया है। जिस प्रकरणमें जिसकी प्रधा-नता है उसमें उसकी प्रशंसा की गई है। 'जिसकी शादी उसका गीत' इस कहावतकी तरह यह है भी स्वाभाविक। बल्कि प्रथमा नुयोगसंबंधी कथासाहित्यमें अनेकत्र पाठकोंको कथाओंमें एकसा भ्रम होता है। कुछ भी हो, पर उन सबका एक मात्र आशय वही है जो ऊपर कहा जा चुका है।

इसमें संदेह नहीं है कि महापुरुषोंके चरित्रश्रवणसे थोडे समयके लिये ही सही, मनमें पापभीति एवं संसारसे विरक्ति अवश्य होती है। वस्तुत मनकी पवित्रता ही आत्मकल्याणकी जड है। इसीलिये कहा गया है कि " मन एव मनुष्याणां कारणं बधमोक्षयो "। आमूलाग्र रामायणकी कथाको सुननेके बाद एक सामान्य व्यक्ति इतना अवश्य जान जाता है कि रावणकी तरह न चल कर रामकी तरह चलना चाहिये। रामायण सुननेका फल यही है। आज कल भी ससारमें फैली हुई, कुरीतियोको दूर करनेके लिये सिनेमा आदिमे जिन कथाओके प्रचारसे ये कुरीतिया दूर हो सकती है, ऐसी ही कथाए तैयार करवाई जाती है। प्राचीन जमानेमें, दृश्य काव्यके रूपये लिखे जानेवाले नाटकोका भी आशय यही था।

अस्तु, नयसेनका धर्मामृत भी प्रथमानुयोग सम्बधी ग्रथ है। इसका भी उद्देश यही है जो प्रथमानुयोग सम्बधी और ग्रंथोका है। इसमे सम्यग्दर्शन, उसके आठ अग तथा अहिसा आदि व्रतोको पालन कर सद्गतिको प्राप्त करनेवाले पुरुषोका चरित्र चित्ताकर्षक ढगसे चित्रित है। बल्कि यह पहिले भी एक बार लिखा जा चुका है इस धर्मामृतका अपरनाम नाम काव्यरत्न है। यह कविका ही रखा हुआ नाम है। श्रीमान् आर नरसिहाचार्यके शद्बोमे नयसेनका यह ग्रथ मृदुमधुरपदगुफित, नीतिश्लोकमुजरजित ललितकृति है। इसके आश्वासोके अतमे निम्न लिखित गद्य है।

'. . .निखिलदिविजपरिवृढमकुटघटितमणिकिरणविलुलितचुबनीयपरमजिनचरणयुगलसरसीरुहमत्तमधुकरनिरुपमसहजकविजनपयःपयोधिहिमकरनुतभावयुतदिगम्बरदासनूत्नकविताविलास श्रीमन्मथसेनदेवविरचित '

० ० ० ०

राजादित्य

ई. सन्. लगभग ११२०

इसने 'व्यवहारगणित,' 'क्षेत्रगणित,' 'व्यवहाररत्न' 'लीलावती,' 'चित्रहसुगे' तथा 'जैनगणित सूत्रटीकोदाहरण' आदि गणित ग्रथोकी रचना की है। इसके ग्रथोसे विदित होता है कि इसे राजवर्मा, भास्कर, बाच, बाचय्य तथा बाचिराज ये नाम और गणितविलास, ओजबेडग तथा पद्यविद्याधर, उपाधिया प्राप्त थी। कूडिमडलान्तर्गत पूविनबागे इसकी जन्मभूमि थी। राजादित्यकी धर्मपत्नीका नाम कनकमाला था। कविने अपनेको ' उर्वीश्वरनिकरसभायोग्य ' कहा है। इससे मालूम होता है कि कवि राजादित्य दरबारी पण्डित रहा। इसने अपने गुरु आदिको ' जिननाथ नेमिनाथ निजगुरु शुभचन्द्रोत्तम ' इस पद्यमे बतलाया है। अर्थात् पद्यमें उपास्य देव नेमिनाथ, गुरु शुभचन्द्र, पिता श्रीपति, माता वसन्ता, अग्रज शान्तनु कहे गये है। राजदित्यका पिता श्रीपति श्री राजमान्य व्यक्ति मालूम होता है। क्योकि उपर्युक्त पद्यमे उसके लिये ' सर्वावनिपस्तुत्यास्पद ' यह विशेषण दिया गया है। इसके व्यव-

हाररत्नान्तर्गत ' नगमष्ट ' आदि पद्यमें इसने विष्णु नृपालका नाम लिया है। बल्कि व्यवहारगणितमें भी कतिपय स्थलोंमें इस राजाका नाम स्पष्ट उपलब्ध होता है।

श्रीमान् आर. नरसिंहाचार्यकी राय है कि यह विष्णु नृपाल होय्सल राजा विष्णुवर्धन होना चाहिये। अन्यान्य प्रमाणोसे सिद्ध होता है कि होय्सल राजा विष्णुवर्धन ई सन् लगभग १११९–११४१ तक राज्य करता रहा। उदाहृत पद्यसे स्पष्ट होता है कि कवि राजादित्यके समयमें विष्णुवर्धन मौजूद था। श्रवणबेलगोलके ११७ वे शिलालेखसे ज्ञात होता है एक शुभचन्द्र ई. सन् ११२३मे स्वर्गासीन हुए थे। बहुत कुछ सम्भव है कि यही कविके गुरू रहे होगे। अगर उपर्युक्त बात ठीक है तो कवि विष्णुवर्धनका आस्थान पण्डित हो कर लगभग ई सन् ११२० मे जीवित रहा होगा।

राजादित्यने अपने पाण्डित्य एव गुणोको 'समस्तविद्याचतुरानन, विबुधाश्रितकल्पमहीरुह, आश्रितकल्पमहीज, सत्यवाक्य, परहितचरित, सुस्थिर, भोगी, गम्भीर, उदार, सच्चरित्र, अखिलविद्याविद, भव्यसेव्य, जनतासस्तुत्य और उर्वीश्वरनिकरसभायोग्य आदि विशिष्ट शद्वो द्वारा व्यक्त किया है। इसकी रचनाओमे व्यवहारगणित गद्यपद्यात्मक कृति है। इसमें सूत्रोको पद्यके रूपमे लिखकर टीका तथा उदाहरण दिये है। ग्रथ आठ अधिकारोमे विभक्त है। प्रत्येक अधिकारको ' हार ' सज्ञा दी गई है। कविने स्वय कहा है कि इस ग्रथको मैने सिर्फ पाच दिनमें लिखा है। साथ ही साथ अपने

ग्रंथकी पद्योंकी प्रशंसा भी की है। अधिकारोंके अंतमें निम्न-लिखित गद्य उपलब्ध है–

'शुभचन्द्रदेवयोगीन्द्रपादारविन्दमत्तमधुकरायमाणमानसानन्दितसकलगणिततत्त्वविलास त्रिनेयजनविनुत श्रीराजादित्यविरचित.....'

इस व्यवहारगणितमे निम्नलिखित विषय है–

सहजत्रयराशि, व्यस्तत्रयराशि, सहजपंचराशि, व्यस्तपंचराशि, सहजसप्तराशि व्यस्तसप्तराशि, सहजनवराशि, व्यस्तनवराशि, पदपिन सूत्र, बण्णान्तरद सूत्र, होदियबिन सूत्र, विधुरे, तूबिन सूत्र, हरवरिय सूत्र, और चक्रबड्डि इत्यादि। श्रीमान् आर नरसिंहाचार्यके मतमे कन्नडमे गणित–शास्त्र लिखनेवाले मान्य कवियोमे राजादित्य ही आदिम कवि है।* इसने गणित शास्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाले प्राय सभी विषयोको अपने ग्रथोमे सग्रह किया है। जनताको इस शास्त्रको सुलभसे समझानेके ग्रंथको पद्यका रूप देना कठिन है। फिर भी राजादित्य ने सूत्र एवं उदाहरणोको ललित पद्योके द्वारा अच्छी तरह समझानेका सफल प्रयास किया है। इन पद्योसे स्पष्ट पता लगता है कि कवि सिर्फ गणितशास्त्रका मर्मज्ञ ही नही था, बल्कि एक पौढ कवि भी। पता नही चलता है कि राजादित्यके इन ग्रथोका आदर्श कौनसा ग्रथ था। अभी-तक सस्कृतमे गणितशास्त्रके दो ही दिगम्बर ग्रथ उपलब्ध

---

* "कर्णाटक कविचरिते" भाग १, पृष्ठ १२२.

हुए हैं । एक महावीराचार्य का 'गणितसार× और दूसरा श्रीधराचार्यका गणितशास्त्र। ÷

राजादित्यके ग्रथोको इन ग्रथोंसे मिलान कर देखनेकी जरूरत है। सम्भव है कि राजादित्यके ग्रथोंका आदर्श उपर्युक्त सस्कृत ग्रथ ही रहे हो। इस बातका अन्तिम निर्णय इन ग्रथोके मिलान से ही हो सकता है। खैर, राजादित्यका दूसरा ग्रथ क्षेत्रगणित और तीसरा व्यवहाररत्न है। व्यवहाररत्नमे पाच अधिकार है। कविका चौथा ग्रथ जैनगणितसूत्रोदाहारण है। इसमे प्रश्न दे कर उत्तर पानेका विधान बतलाया है। राजादित्यका पाचवा ग्रथ चित्रहसुगे है। यह सूत्र-टीकारूप है। इसका छठवा ग्रंथ लीलावति है। यह पद्यरूप है। इसमे हिसाब बनाकर दिखलाये गये है।

इसमें शक नही है कि राजदित्य अच्छा गणितज्ञ था। सम्भव है कि विद्वानोकी नजरोसे नहीं गुजरा हुआ गणित-शास्त्र सम्बधी इसका और भी कोई महत्त्व पूर्ण ग्रथ मौजूद हो। कविके उपर्युक्त कुल ग्रथका एक सुन्दर सग्रह प्रकाशित करनेकी आवश्यका है।

× यह ग्रथ विश्वविद्यालय मद्रासकी ओरसे प्रकाशित हो चुका है।

÷ मूडबिद्रीमें हालमें प्राप्त यह ग्रथ 'भारतीय ज्ञानपीठ' काशीकी ओरसे प्रकाशनार्थ सम्पादित हो रहा है।

कीर्तिवर्मा

(ई. सन् लगभग ११२५)

इसने ' गोवैद्य ' लिखा है। ' जिननाप्तं गुरु देवचन्द्र-मुनिपं. ' इस पद्यसे कविका पिता त्रैलोक्यमल्लाधिप, अग्रज विक्रमाक नरेन्द्र, गुरु देवचन्द्रमुनि और उपास्य देव जिनेन्द्र भगवान् विदित होते हैं। लगभग इसके समसमयवर्ती कवि ब्रम्हशिवने भी अपनी समयपरीक्षामे उपर्युक्त बातोका समर्थन किया है। बल्कि ब्रम्हशिवके पद्यसे कीर्तिवर्माका पिता त्रैलोक्यमल्लाधिप चालुक्यवशी सिद्ध होता है। * चालुक्य राजवशमे त्रैलोक्यमल्लने ई सन् १०४२ से १०६८ तक तथा (उसका) पुत्र विक्रमादित्य ने ई सन् १०७६ से ११२६ तक राज्य किया था। यही विक्रमादित्य कविका अग्रज होगा। ऐसी अवस्थामे कीर्तिवर्माका काल ई सन् लगभग ११२५ मानना अयुक्तिसगत नही होगा। यह मत श्रीमान् आर नरसिंहाचार्यका है। + हा, विक्रमादित्यके दो भाई थे। एक जयसिंह (तृतीय) और दूसरा विष्णुवर्धन विजयादित्य। पता नही चलता है कि कीर्तिवर्मा इन्हीमे से एक था या तीसरा ही।

---

* जनतानद चलुक्यभरणनवनिपालोत्तम सार्वभौम।
जनक त्रैलोक्यमल्ल सकलवसुमतीवल्लभ विक्रामाका- ॥
वनिप तानग्रजात त्रिभुवनपतिदेवाधिदेव जिनेद्र।
तनगाप्त मत्तेनल्के पिरियनो जगतीनाथरोळ् कीर्तिवर्म ॥

\+ 'कर्णाटक कविचरिते' भाग १, पृष्ठ १२९

मालुम हुआ है कि त्रैलोक्यमल्लको केतलदेवी नामक जैन धर्मानुयायिनी एक रानी रही और उसने अपनी ओरसे कतिपय जिनालय बनवाया था ×। सम्भव है कि यह उसीका पुत्र हो। श्रीमान् आर. नरसिंहाचार्यका कहना है श्रवण-बेलगोलस्थ ६४ वे शिलालेख (ई सन् ११६३) मे प्रति-पादित गुरुपरपरामे राघवपाण्डवीयके रचयिता, श्रूतकीर्ति† के समकालीन एक देवचन्द्रकी स्तुति की गई है। प्राय यही कविका गुरु होगा।

कीर्तिवर्माने कविकीर्तिचन्द्र, वैरिकरिहरि, कदर्पमूर्ति, सम्यक्त्वरत्नाकर, बुधभव्यबान्धव, वैद्यरत्न, कविताब्धिचन्द्रम और कीर्तिविलासादि विशेषणोके द्वारा अपने गुणोको प्रगट किया है। वस्तुत यह एक उल्लेखनीय बात है कि

× Ind, Ant,XIX, 268

†महाकवि धनजयका एक राघवपाण्डवीय (द्विसन्धान) सुप्रसिद्ध है। बल्कि वह निर्णयसागर मुद्रणालय बबईकी ओरसे प्रकाशित हो चुका है। मालूम होता है कि श्रुतकीर्तिका यह राघयपाण्डवीय धनजयके उस राघवपाण्डवीय से भिन्न है। पर मेरी जानकारीके अनुसार श्रुतकीर्तिका यह काव्य अभी तक उपलब्ध नही हुआ है।

जैन कवियोने प्रत्येक विषयपर अपनी कलम चलाई है। इन मान्य कवियोने सिर्फ मानव हितके लिये ही नही, पशु-पक्षियोके 'कल्याणके लिये भी बहुत कुछ किया है। अहिसा-प्रधान जैनधर्मके लिये यह कोई नई बात है भी नही है। इसमे तीर्थंकरोंकी समवसरणसभामे भी विना भेदभावके प्राणिमात्रको प्रवेश करनेका एव उनके कल्याणकारी उपदेशको सुननेका पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वस्तुत जिस धर्ममे इस प्रकारकी उदारता नही है, वह विश्वधर्म कहलानेका दावा नही कर सकता। इसलिये कीर्तिवर्माका यह प्रयास वास्तवमें स्तुत्यही नही, अनुकरणीय भी है। बल्कि सस्कृतमे 'मृग-पक्षिशास्त्र' नामक एक जैन ग्रथ है जो कि अपने विषयका एक अमूल्य रत्न है। इस ग्रथकी प्रशसा केवल पौर्वात्य विद्वानोने ही नही पाश्चात्य विद्वानोने भी मुक्तकठसे की है। इस समय यह ग्रथ अप्राप्य है। इसके पुनर्मुद्रणकी बडी जरूरत है।

अस्तु, कीर्तिवर्माके गोवैद्यमें गोव्याधियोकी औषध, मत्र और यत्र आदि विस्तारसे दिये गये है। ग्रथ प्रकाशनीय है। हा, इसकी ससग्र शुद्ध प्रतिकी आवश्यकता है। देहातवाले आज भी कठिन से कठिन गोव्याधियोको इन औषधोके द्वारा ही अच्छा किया करते है।

ब्रह्मशिव

इसने ' समयपरीक्षा ' एवं ' त्रैलोक्यचूडामणिस्तोत्र 'को रचा है। इसका गोत्र वत्स, जन्मस्थल पोट्टणगेरे और पिता सिंगराज है। कविने अपनेको अग्गलका मित्र बतलाया है, पता नहीं है कि यह अग्गल कौन है। यह ' चन्द्रप्रभपुराण ' का रचयिता अग्गलदेव (ई. सन् ११८९) नहीं हो सकता। ब्रह्मशिवके श्रद्धेय गुरु मुनि वीरनन्दी हैं। समय परीक्षाके पद्यमें कवि सौर, कौलोत्तर, वेद और स्मृति आदिका विशेषज्ञ मालूम होता है। बल्कि इसने उपर्युक्त ग्रंथोंको निःसार ठहराया है। इसके और एक पद्यसे यह भी ज्ञात होता है कि पहले यह शैव था। उसे सारहीन अनुभव कर पीछे इसने जैनधर्मको स्वीकार किया है। इसकी पुष्टि कविके नामसे भी होती है। त्रैलोक्यचूडामणिस्तोत्रके अन्तिम पद्यसे सिद्ध होता है कि राजसम्मानके साथ साथ इसे ' कविचक्रवर्ती'की उपाधि भी प्राप्त थी। ' दानविनोदा ' अत्तिमब्बे, जिनसमयवार्धिवर्धनतारापति रामतराय, चालुक्यराजा त्रैलोक्यमल्लका पुत्र कीर्तिवर्मा ×देवनागका पुत्र आहवमल्लमहेश इन सबकी स्तुति पूर्वक इसने समयपरीक्षाको प्रारम्भ किया है। इनमेंसे अत्तिमब्बे और रामतरायका विशेष परिचय कुछ भी नहीं मिलता है। खैर, उपर्युक्त आधारसे ब्रह्मशिव कवि कीर्तिवर्माका समकालीन सिद्ध होता है। अतः यह ई. सन् लगभग

× यह 'गोवैद्य' का रचयिता है।

११२५ में रहा होगा और इसके गुरु मुनि वीरनन्दी ई सन् १११५ में स्वर्गस्थ, मेघचन्द्रत्रैविद्य*के शिष्य होगे।

ये वीरनन्दी वे ही है, जिन्होने शा श. १०७६ (ई सन् ११५३) में स्वकृत 'आचारसार'की एक कन्नड व्याख्या लिखी थी। =यद्यपि श्रवणबेलगोलाके शिलालेख न ५० मे उपर्युक्त आचार्य वीरनन्दीको मेघचन्द्रके 'आत्मजात' के रूपमे उल्लेख किया है —बल्कि श्रीमान् आर नरसिहाचार्यने अपने 'कवि-चरित्रे' म इस 'आत्मजात शब्दका अर्थ निश्चित रूपमे 'मग' अर्थात् पुत्र किया है —किंतु यहा पर आत्मजात शब्दका अर्थ पुत्र न करके शिष्य करना ही सर्वथा उचित है। क्यो कि मुनि अवस्थामें किसीके भी साथ पुत्र-पौत्र आदि पूर्वका सम्बध जोडना सर्वथा अप्रासगिक है। जब वे एक बार सर्वस्व त्याग कर एकातत अकिंचन बन गये है तब उनके साथ पुत्र, पौत्र आदिका पूर्व सम्बध कैसे जोडा जा सकता है। हा, शिष्य वस्तुत पुत्रतुल्य होनेसे आलकारिक शब्दोमें भले ही उसे आत्मजात, आत्मज, तनुज आदि शब्दोके द्वारा उल्लेख कर दे।

केशिराजने अपने 'शब्दमणिदर्पण' के ७५ वे सूत्रके नीचे ब्रह्मशिवके 'पदेदाड तवे कोडु . ' इस पद्यके अन्तिम भागको उदाहरण स्वरूपमे लिया है। कविने जैनमार्गनिश्चित-चित्त, जिनसमयसुधार्णववर्धनचन्द्र, जिनधर्मामृतवार्धिवर्धन शाक, तीव्रमिथ्यात्वबन्धनचण्डाशु और कषायमूढतिमिर-

---

* वैदग्ध्यश्रीवधूटीपतिरत्नगणालकृतिर्मेघचन्द्र- ।
त्रैविद्यस्यात्मजातो मदनमहिभृतो भेदने वज्रपात ।
संद्धान्तव्यूहचूडामणिरनुपलचिन्तामणिर्भूजनानाम् ।
योऽभूत्सोजन्यरुन्द्रश्रियमवति महो वीरनन्दी मुनीन्द्र ।५०।
(जैनशिलालेखसग्रह लेख न ५० (१४०)

=कर्णाटक कविचरिते भाग १, पृष्ठ १६८

÷ 'कर्णाटक कविचरिते' भाग १, पृष्ठ १३२

ःवातद्विष आदि शद्वोके द्वारा अपने गुणोको प्रकट किया है।
समयपरीक्षामें आप्तागमधर्म और अनाप्तागमधर्म इस प्रकार
धर्म दो भागोमें विभक्त है। इसमे कविने सौर, शैव और
वैष्णव आदि धर्मोंको अमान्य तथा सदोष ठहरा कर जैन
धर्मको सर्वोत्कृष्ट बतलया है। ग्रथ प्रारम्भसे अत तक कन्द
पद्योमें ही रचा गया है। यह १५ अधिकारोमें विभक्त है।
अधिकारके अन्तमें निम्न लिखित गद्य है—

' भगवदर्हत्परमेश्वरचरणस्मरणपरिणतान्त करण-
वं रनन्दिचरणसरसिरुहषट्चरण---मिथ्यासमयतीव्रतिमिरचण्ड-
किरण--सकलागमार्थनिपुण-महाकवि ब्रह्मशिवविरचित। इसका
बन्ध सरल एव ललित है। कन्नड साहित्यके मर्मज्ञ अन्यमत-
दूषक कन्नड जैनकवियोमे ब्रह्मशिव को आदिम कवि मानते
है। इस बातको मै भी स्वीकार करता हू। पर प्रत्येक विचार-
शील विद्वान् इस बातको अवश्य स्वीकार करेगा कि हर एक
लेखकपर देशके तत्कालीन वातावरणका प्रभाव अवश्य पडता
है। इस अनिवार्य नियमको कोई रोक नही सकता। इसलिये
सर्वप्रथम कर्णाटकके ब्रह्मशिवकलीन वातावरणका अध्ययन
करना बहुतही आवश्यक है। वस्तुत अगर कर्णाटकका वाता-
वरण उस समय इसी प्रकारका था तो ब्रम्हशिवने कोई अनुचित
काम नही किया। क्योकि कोई भी धर्म अपनी सत्ताको तब ही
कायम रख सकता है कि जब वह देशके तत्कालीन वाता-
वरणके अनुकूल अपने बाह्यरूपमे कुछ न कुछ परिवर्तन स्वीकार
करेगा। इसके लिये धार्मिक इतिहासमे एक दो नही, सेकडो
दृष्टान्त देखनेको मिलते है। क्या आपको याद है कि आचार्य
जिनसेनने अपने कालमे जैन धर्मके बाह्यरूपमे कितना परि-
वर्तन कर डाला था। इसका एक मात्र कारण देशका क्षुब्ध
वातावरण ही था। वास्तवमे अगर वे उस समय ठससे मस नहीं
होते तो पता नही कि कर्णाटकमें जैनधर्मकी सत्ता किस रूपमें

टिश्ती। जिनसेनजीने उस समय बडी ही दूरदर्शितासे काम लिया। अन्यथा बडा अनर्थ हो जाता। जैनाचार्योंमे परस्पर दिखाई देनेवाले शासन-भेदका मूल कारण भी देशका तत्कालीन वातावरण ही है। यह एक स्वतन्त्र तथा गहन विषय है। इस बातका विशद वर्णन इस छोटसे परिचयमे नही हो सकता। इस सम्बधमें एक स्वतन्त्र पुस्तकही अपेक्षणीय है।

ब्रह्मशिवकी दूसरी कृति 'त्रैलोक्यचूडामणि स्तोत्र'× है। इसमे ३६ वृत्त है। इसका अपर नाम 'छत्तीसरत्नमाला' है। प्रत्येक पद्य त्रैलोक्यचूडामणि शब्दसे समाप्त होता है। इसमे भी ब्रह्मशिवने अन्य मतोकी मान्यताओंको खुले शब्दोमें खण्डन किया है। समालोचना कोई बुरी चीज नही है। फिर भी उसमें कटु शब्दोका प्रयोग न करके सौम्यशब्दोका उपयोग करना प्रशस्त मार्ग है। किसी भी बातको कटु शब्दोकी अपेक्षा मीठे शब्दोके द्वारा समझाना अधिक फलकारी होता है। बल्कि कटु शब्दोके प्रयोगसे कभी कभी बडा अनर्थ हो जाता है। साथ ही साथ समालोचनाका एक मापदण्ड भी होना चाहिये। अब समालोचनाकी शैली भी बदल गई है। कोई भी विचारशील नवीन विद्वान् इस पुरानी शैलीको पसद नही करता है। भले ही समालोचनाकी शैली बदले। पर समालोचनाका अस्तित्व ससारसे मिट नही सकता। ससारमे जबतक वस्तु बनी रहेगी तबतक उसकी समालोचना भी अनिवार्य रूपसे होती रहेगी। इसमें शक नही है कि कुछ शताब्दियोके पूर्व खण्डन-मण्डनका बाजार गरम था। उस जमानेमे प्रत्येक धर्मानुयायी इसीसे अपने धर्मकी उन्नतिका स्वप्न देख रहा था। मगर इससे हुआ कुछ नही। खैर, यह विषयान्तर है। इसके लिये दूसरा ही क्षेत्र मौजूद है।

× यह अनन्तकीर्तिग्रथमाला (कन्नड) नेल्लिकारकी ओरसे प्रकाशित हो चुका है।

कर्णपार्य

(ई सन्. लगभग ११४०)

इसने ' नेमिनाथपुराण ' लिखा है। कर्णप, कण्णप' कन्नमय्य, कण्णमय्य, कण्णपय्य, कण्णम आदि इसके नामान्तर है। ज्ञात होता है कविको परमजिनमतक्षीरवाराशिचन्द्र, भव्यवनजवनमार्तण्ड, सहजकवितारसोदय, सम्यक्त्वरत्नाकर, भुवनैकभूषण, गाम्भीर्यरत्नाकार और बुधकाव्यभ्यासङ्ग ये उपाधिया प्राप्त थी। कर्णपार्यने अपने समयके सम्बन्धमे स्वरचनामें कही भी कुछ भी सकेत नही किया है। इसलिये इसके समयके विषयमें विद्वानोमें मतभेद होना सर्वथा स्वाभाविक है। फलत विद्वानोने कविके कालनिर्णयमे सहायक, उपलब्ध साधनोके आधारपर अन्यान्य उपपत्तियोके द्वारा कर्णपार्यका काल भिन्न-भिन्न निर्धारित किया है। ऐसे विद्वानोमे स्व आर· नरसिहाचार्य, डॉ वेकटसुब्बय्य, एम् गोविन्द पै. और एच· शेष अय्यगार प्रमुख है। आर. नरसिहाचार्यके मतसे कर्णपार्यका समय ई सन् ११४० है। पर डॉ. वेकटसुब्बय्या तथा एम गोविन्द पै आचार्यजीके इस समयनिर्णयसे सहमत नही है। इनका कहना है कि कर्णपार्यका समय ई सन् ११७४ होना चाहिये। पर एच. शेष अय्यंगार इन उभय विद्वानोके द्वारा निर्धारित कालनिर्णयको भी नही मानते है। इनकी रायसे कर्णपार्यका समय ई सन् ११३० से ११३५ है।

× कुछ भी हो यह तो निर्विवाद बात है कि कर्णपार्य १२ वी शताब्दीका विद्वान् है।

नेमिनाथपुराणके रचयिता कवि कर्णपार्यके श्रद्धेय गुरु मलधारिदेवके शिष्य कल्याणकीर्ति है। श्रीमान् एच. शेष अय्यगारकी रायसे श्रवणबेलगोलस्थ शिलालेख न ६९ में प्रतिपादित मलधारी हेमचन्द्रके अथवा इनके सधर्मा माघ-नन्दीके शिष्य कल्याणकीर्ति और कर्णपार्यके गुरु कल्याण-कीर्ति ये दोनो भिन्न है। स्वगुरु कल्याणकीर्तिके बाद अपनी रचनामे कवि कर्णपार्यके द्वारा सस्तुत बालचन्द्र, शुभचन्द्र आदि कल्याणकीर्तिके ही सधर्मा मालूम होते है। क्योकि श्रवणबेल्गोलके उक्त शिलालेखमें मूलसघ, देशीयगण, वक्र-गच्छीय बालचन्द्रके साथ शुभकीर्ति आदि और भी कई व्यक्ति मलधारी देवके सधर्मा कहे गये है। हा, पूर्वोक्त शिला-लेखमे लेख या लेखान्तर्गत गुरुपरपराका समय नही दिया गया है। श्रीमान् आर नरसिहाचार्यने चन्नरायपट्टणके न १४८ के शिलालेखके आधारपर गोपनन्दीके शिष्य मलधारी देव और उनके सधर्मा कल्याणकीर्तिका नामोल्लेख करनेवाले श्रवण–बेल्गोलके उपर्युक्त शिलालेखका समय ई सन् ११००

× विशेष जानकारीके लिये 'नेमिनाथपुराण' का उपो-द्घात पृष्ठ ७–३१ देखें। इसमें उपर्युक्त शेष विद्वानोके द्वारा प्रतिपादित युक्तियोका सार भी दिया गया है।

निर्धारित किया है। आचार्यजीका कहना है कि श्रवणबेल्-गोलके उक्त शिलालेखमें प्रतिपादित मलधारी देवके गुरु गोपनन्दीको ई सन् १०९४ मे विक्रमादित्यका पुत्र एरयगके द्वारा एक दान दिया गया था। इसलिये शिलालेखोक्त गोप-नन्दी, तच्छिष्य मलधारी देव तथा तत्सधर्मा कल्याणकीर्तिका समय ई सन् ११०० होना चाहिये।

परतु एच शेष अय्यगार आचार्यजीके इस कालनिर्णयसे सहमत नही है। उनका कहना है कि विक्रमादित्यका पुत्र एरयंगसे दान ग्रहण करनेवाले गोपनन्दीसे उनके शिष्य मल-धारी देवका समय बिना प्रबल आधारके सिर्फ छह वर्ष पीछे निर्धारित करना सयुक्तिक नही कहा जा सकता। बल्कि चन्नरायपट्टण ताल्लूक तगडूरके न १९८ के शिलालेख=में प्रतिपादित कल्याणकीर्ति और श्रवणबेल्गोलके शिलालेखमें अकित कर्णपार्यके गुरु कल्याणकीर्ति ये दोनो एक ही है। ऐसी अवस्थामे कण्याणकीर्तिका समय ई सन् ११३० के बाद ही मानना सर्वथा समुचित है। बल्कि तगडूरके उपर्युक्त शासनमे ई सन् ११११ से ११४१ तक राज्य करनेवाले होय्सल विष्णुवर्धनका पादपद्मोपजीवी दण्डनायक मरियाने तथा भरतका उल्लेख पाया जाता है। अत तगडूरका यह शासन ११११ से ११४१के अन्दर अर्थात् ११३० में लिखा गया गया था यह मानना समुचित ही है।

= इसका समय ई सन् ११३० बतलाया जाता है।

कवि कर्णपार्यने अपने पुनीत गुरु कल्याणकीर्तिको निखलविबुधजनविनूत्न, साश्चर्यचारित्रचक्रवर्तीचतुरानन, दिक्समूहच्छन्नोज्ज्वलकीर्तिकात, सभ्दव्यससेव्य, अव्युच्छिन्ना-त्मसुभावनापर, आचार्यवर्य, अमल, स्वच्छ और अनिन्द्य आदि विशेषणोके द्वारा स्मरण किया है। इससे सिद्ध होता है कि मुनि कल्याणकीर्ति वस्तुत एक असाधारण व्यक्ति थे। वे चारित्रके ही तीर्थ नही थे, किन्तु ज्ञान एव गुणके भी। इसी लिये निखिल दिद्वत्समाज उनके समक्ष नतमस्तक था, चारो ओर उनकी निर्मल कीर्ति फैली हुई थी। अमल, स्वच्छ तथा अनिन्द्य विशेपण ही उनके चारित्रकी उज्ज्वलताको व्यक्त कर रहे है। यही कारण है कि कर्णपार्यके द्वारा वे अपनी कृति नेमिनाथपुराणके प्रत्येक आश्वासान्तर्गत अन्तिम गद्यमें साश्चर्यचारित्रचक्रवर्तीके रूपमे सादर स्मरण किये गये है। बल्कि इसीलिये तो वे सद्भव्यससेव्य कहे गये है। अव्युच्छिन्नात्मसुभावनापर होनेसे ही कल्याणकीर्ति आचार्य-प्रवरके रूपमें स्तुत है। श्रवणबेलगोलके शिलालेखमें भी इनकी काफी प्रशसा मिलती है। वास्तवमें कर्णपार्य जैसे राजमान्य एव लोकमान्य सुकविके गुरु सामान्य विद्वान् कैसे हो सकते थे।

अब कर्णपार्यके पोषकको लीजिये। इसने अपने पोषकके सम्बन्धमे नेमिनाथपुराणके प्रारभ एवं अन्तमे निम्न प्रकार लिखा है—

'मरुवक्कसर्ग' एवं सुविख्यात विद्याधर-चक्री 'जीमूत-वाहन' वंशको तिलकस्वरूप राजा गण्डरादित्य विश्रुत किल-किल दुर्गका नायक है। उसका पुत्र राजा विजयादित्य और रानी पोन्नल देवी है। उक्त शासकका राज्यभारधौरेय अर्थात् मंत्री गोपणार्यका जामाता, करणाग्रणी लक्ष्म (लक्ष्मण) ने इस पुराणको रचवाया। इस प्रकरणमें राजा गण्डरादित्य उदात्त, पुरुषोत्तम, जनसंरक्षणदक्ष, क्षितिनुत और गाम्भीर्यरत्नाकर= तथा पुत्र विजयादित्य कृतकृत्य अतिबल, सत्यार्णव, नित्यसम्पद, अत्यूर्जिततेज, अर्जितगुणव्रात, बुधाधार, उन्मदविद्विषनृपालजालविपिनग्रीष्मोग्रदावानल, विश्व-कलाविरश्चि अत्युग्रप्रताप, धराहितधर्मोद्धुरजन्मभूमि, गोमन्त-शैलाग्रधृतभास्वत्कमलावभासि और जगद्दीपक* आदि विशिष्ट शब्दो के द्वारा उल्लेख किये गये है। इसी प्रकार पोन्नल देवी भी विविधकलाओकी प्रवीणतामे सरस्वती, रूपमें रती, सौन्दर्य में हैमवती, दर्शनविशुद्धिमें रेवती और पतिभक्ति मे अरुंधती कही गई है।× बाद कविने मंत्री लक्ष्मण को उद्धु-रतेज, विभु, धराहितकर, सम्यक्त्वरत्नाकर, लोकविश्रुत, जिन-चरणकमलहंस, जननेत्र, विभवमूर्ति, गोत्राभरण, कुनयतमोरिपु

= 'नेमिनाथपुराण' आश्वास १, पद्य २४

* नेमिनाथपुराण आश्वास १, पद्य २५-२६

× नेमिनाथपुराण आश्वास १, पद्य २७

भव्यवनजवनमार्तण्ड, सत्यदाक्षिण्यमेरु, सुरभूजज्याय आनन्दित, बुधजनक, वृषाधार, परमजिनमनवाराशिचन्द्र आदि विशेषणो से स्मरण किया है ।

इसी प्रसगमें कवि कर्णपार्यने राजा लक्ष्मके अनुज वर्धमान, शान्त और शान्तका पिता— गोवर्धन या गोपणका उल्लेख भी किया है । इस वर्णनमे कविने वर्द्धमानको अखिलाशावर्तितकीर्ति, मकरध्वजमूर्ति, उर्वीनुतगुणनिधान आदि और शान्तको अखिलविद्याकान्त, उर्वीजनसेव्य तथा सौन्दयनीराकर आदि विशेषणोके द्वारा उल्लेख किया है । शान्तके श्रद्धेय पिता गोपणको भी प्रशसा की गई है । कहा गया है कि यह गोपण दर्शनिकसे लेकर परिग्रहत्यागनकको प्रतिमाओको निरतिचार पालन करनेवाला श्रावकोत्तम था । यह तो हुई ग्रथके प्ररम्भकी बात । फिर ग्रथान्तमें अपने परमाराध्य देव जिनचन्द्र नेमिचन्द्रके साथ साथ लक्ष्मका अनुज वर्धमान तथा शान्त और शान्तका पिता श्रीभूषण— एव माता गुणनिधि कचव्वे या कजव्वेका भी उल्लेख किया है । हा, ग्रथारंभमे लक्ष्मणकी कुलागनाके सम्बन्धमे कुछ भी नही कहा गया था । किंतु यहा पर उसकी काफी प्रशसा की गई है । यह जिनपूजामे शची, चतुर्विध दानमें अत्तिमब्बे, जिनभक्तिमे शासनदेवी, शीलरत्नमण्डना, शिष्टकल्पलता आदि रूपमे उल्लेख की गई है ।

— पर लक्ष्मणका साक्षात् पिता कौन था, यह नही मालूम हुआ ।

— प्रारम्भमें इसका नाम गोवर्धन या गोपण बतलाया था ।

श्रीमान् आर. नरसिंहाचार्यका कहना है कि राजा गण्ड-रादित्यके विजयादित्य, लक्ष्मण, वर्धमान और शान्त इस प्रकार चार लडके थे। कवि कर्णपार्यका आश्रयदाता लक्ष्म विजयादित्यका सहोदर लक्ष्मण ही है। ० पर डा वेंकटसुब्बय्य आचार्यजीके इस मन्तव्यसे सहमत नहीं है। वे कहते हैं कि गडरादित्य और लक्ष्म या लक्ष्मणका पिता गोवर्धन अथवा गोपण भिन्न भिन्न है। गडरादित्यको विजयादित्य एक ही लडका था। कर्णपार्यका आश्रयदाता लक्ष्म सिर्फ उसका मंत्री था। इसके दो भाई थे। वर्धमान और शान्त। वेंकटसुब्बय्यका यह कथन कर्णपार्यके नेमिपुराणके कथनसे बिलकुल मेल खाता है। इसलिये मुझे तो यही कथन समुचित जचता है। हां, विजयादित्यका कोई सहोदर नहीं था, आपको यह बात ई. सन् ११६५ के एकसंबिके शासनसे बाधित है। क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा है कि विजयादित्य गडरादित्यका ज्येष्ठ पुत्र था ८। इसलिये इसका कोई अनुज अवश्य होना चाहिये। साथ ही साथ कवि कर्णपार्यके द्वारा प्रयुक्त 'रूपनारायण' उपाधि=से यह भी मानना होगा कि इसका आश्रयदाता लक्ष्म राजवंशीय अवश्य था। क्योंकि यही उपाधि कविके द्वारा गडरादित्य तथा विक्रमादित्यको भी प्रयुक्त है।

नेमिनाथ पुराणके सम्पादक एच शेष अय्यगार ने इस पुराण की प्रस्तावनामें एकसंबि आदि भिन्न भिन्न स्थानोंमें

---

० 'कर्णाटक कविचरिते' भाग ३, का उपोद्घात देखें।

८ मैसूर आर्किओलाजिकल् रिपोर्ट १९१६, पृष्ठ ४८–५०

= नेमिनाथपुराण आश्वास १, पद्य ३०

प्राप्त कतिपय शिलालेखों का हवाला देकर यह सिद्ध किया है कि इन शिलालेखों में प्रतिपादित राजा विजयादित्य और कवि कर्णपार्यके द्वारा नेमिनाथपुराण में उक्त विजयादित्य ये दोनों अभिन्न हैं और इसका काल ई० सन् ११६४ तक होना चाहिये। अय्यगारजी के द्वारा उद्धृत किये गये शिलालेखोंमें पहला लेख एकसंबि* नामक ग्राम में प्राप्त त्रिभुवनमल्ल बिज्जणका लेख है। उक्त लेखका मुख्य आशय यह है कि विजयादित्यका महाप्रधान पडेवल कालियण्णने यापनीयसंघ, पुन्नागवृक्ष, मूलगणके श्रीमन्महामण्डलाचार्य मुनिचन्द्र एवं विजयकीर्तिके शिष्य कुमारकीर्तिको श्री नेमिनाथ स्वामीका आलय बनवा कर उसकी नित्यपूजा आदिके शाश्वत प्रबन्धके लिये गुरुपादप्रक्षालनपूर्वक दान दिया। बल्कि इस विजयादित्यका समसामयिक रट्टवंशी शासक कार्तवीर्य भी इस जिनालयको देखकर प्रसन्न हुआ और इस मन्दिरकी त्रिकालीन देवपूजा, बाजा, आहारदान, जीर्णोद्धार आदि पवित्र कार्योंके लिये अपनी ओरसे भी शक १०८६ (ई. सन् ११६४) के तारणसंवत्सरीय फाल्गुण शुक्ला त्रयोदशी बृहस्पतिवारको एक भूदान दिया। इससे सिद्ध होता है कि विजयादित्यका शासन शक १०८६, (ई सन ११६४) तक मौजूद था।

---

* यह लेख मद्रास प्राच्यकोषागारस्थ लोकल रिकार्डस (VOL, 27 No.10) में मिलता है।

दूसरा लेख नं ३४ वाला शेडवालका है। इसमें भी राजा विजयादित्य के लिये शिलाहारनृपनरेन्द्र, जीमूतवाहना-न्वयसम्भूत और मरुवक्कसर्प आदि विशेषण दिये गये है। इस लेख का आशय यह है कि राजा विजयादित्यने शक १०७८(ई सन्,११५६)में कोत्तलिके द्वारा निर्माण कराये गये जिन मन्दिरके लिये सुनारो से द्रव्य दिलाया। इससे भी सिध्द होता है कि विजयादित्य ई सन् ११५६मे वर्तमान था।

तीसरा लेख कोल्हापुर निकटवर्ति मुत्तिगे नामक स्थानमे उपलब्ध लेख है। इससे इतना ही सिद्ध होता है कि विजयादित्य शिलाहार वंशी था और शिलाहारवशके शासकोने ई. सन् ११५० से ६८ तक राज्य किया था।

चौथा लेख १७ नम्बरवाला कोल्हापुरका है। यह अपूर्ण है। इस लेख से विजयादित्यका समय ज्ञात नही होता है। हा, विजयादित्यके लिये प्रयुक्त उपाधियो से इतना अवश्य सिद्ध होता है कि यह कर्णपार्यस्मृत विजयादित्य ही है, दूसरा नही।

पाचवा लेख कोल्हापुरान्तर्गत भामणिका है। = इस लेखमे भी विजयादित्यके लिये पूर्वोक्त वे सभी उपाधियां प्रयुक्त है। इस लेख का आशय यही है कि विजयादित्यके शासनकालमें शक१०७३ ई सन् ११५१ मे मडलूर ग्राममें काम गौंड (गवुड)के द्वारा निर्माण कराये गये जिनालयके

= Epigraphia Carnatica III P. 213

लिये एक दान दिया गया। इससे भी ज्ञात होता है कि विजयादित्य ई सन् ११५१मे विद्यमान था।

छठवा लेख कोल्हापुरके एक जैन देवालयके समीप प्राप्त लेख है।* यह भी विजयादित्यके शासनकालमे लिखा गया था। इस लेखमे भी विजयादित्यके लिये तगरपुरवराधीश्वर, शिलाहार नरेन्द्र, जीमूतवाहानान्वयप्रसून और मरुवक्कसर्प आदि विशेषण दिये गये है। इस लेख का आशय यह है कि मूलसघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छीय क्षुल्लकपुर (कोल्हापुर)के रूपनारायण(?) जिनालयाचार्य माघनन्दिसिध्दान्तदेवके प्रियशिष्य वासुदेवके द्वारा निर्मापित मन्दिरके लिये शक१०६५ई सन ११४३ मे सामन्त कामदेवने माघनन्दीके शिष्य माणिक्यनन्दी पण्डितदेवके पादप्रक्षालनपूर्वक दान दिया। इससे भी स्पष्ट होता है कि विजयादित्य शक१०६५ई सन् ११४३ मे राज्य कर रहा था।

सातवा लेख विजयादित्यके पुत्र भोजका है। इससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि विजयादित्य ई सन ११९० से पूर्वका है। यहा तकके कुल उल्लेखो का साराश यही हुआ कि अद्यतन* शब्दके द्वारा कर्णपार्य से स्मृत नागचन्द्र या अभिनवपंप का काल ई सन १११५, कवि कर्णपार्यके गुरू कल्याणकीर्तिका काल ई सन ११३०–११३५, कर्णपार्य के आश्रयदाता लक्ष्म या लक्ष्मणके अधिराज शिलाहारवशीय विजयादित्यका काल

---

* Epi Ind. XI, P 209

* 'नेमिनाथपुराण' आश्वास १, पद्य २२

ई. सन् ११४३–११६४ होना चाहिये। इस हिसाबसे लक्ष्मके आश्रित नेमिनाथपुराणके रचयिता कवि कर्णपार्यका काल ई. सन् ११३०–११३५ सिद्ध होता है।

अब तक सिर्फ कर्णपार्यके कालके सम्बन्धमें विचार किया गया। अब देखना है कि कर्णपार्यका जन्मस्थल कौनसा है। खेदकी बात है कि इमने अपनी कृतिमें भी जन्म-स्थल, वश और मातापिता आदिके सम्बन्धमें कुछ भी प्रकाश नही डाला है। ऐसी अवस्थामें कविका जन्मभूमिके विषयमें इस समय कुछ भी नही कहा जा सकता। हां, नेमिनाथपुराणके समवसरणके विवरणमें तीर्थंकर नेमिनाथके द्वारा धर्मप्रचारार्थ विहार किये गये देशोंमें सबसे पहले करहाट (कोल्हापुर) का नाम आया है। ८ कर्णपार्य करहाटका शिलाहारवशी राजा विजयादित्यके मत्री लक्ष्मका आश्रित था। इससे कवि कर्णपार्यका जन्मस्थल करहाट अनुमान करनेके लिये कुछ गुजाइश अवश्य है। ●

परतु बलिष्ठ प्रमाणके अभावमें उपर्युक्त करहाटको ही निश्चित रूपसे कविका जन्मस्थल मानना युक्तिसगत नहीं होगा। क्योकि समवसरणके विवरणमें सर्व प्रथम करहाटका नाम कविने जो लिया है, इसका और भी कोई अदृष्ट कारण हो सकता है। अब रही बात कर्णपार्यका वश, माता आदिके सम्बन्धमे। इन विषयोका सकेत कविकी कृति नेमिनाथपुराणमें कही भी कुछ भी नही मिलता है। ऐसी दशामें इस समय इन

---

८ 'नेमिनाथपुराण' आश्वास १३, पद्य १०३

● 'नेमिनाथपुराण' की प्रस्तावना पृष्ठ ३१

विषयोंमें मौनावलम्बनके सिवा और कोई चारा नहीं दीखता। अब महाकवि कर्णपार्यके अमर काव्य नेमिनाथपुराणपर भी कुछ प्रकाश डालना परमावश्यक है।

यह एक जैन पुराण है। इसमें तीर्थंकर नेमिनाथ बलदेव कृष्ण वासुदेव बलरामका चरित्र अंकित है। साथ ही साथ इसमे कुरुवशी कौरव एवं पाण्डवोका चरित्र भी आ गया है। सस्कृतअपभ्रश आदि आर्य भाषाओमे हरिवशचरित्र-प्रतिपादक जैन कृतिया अनेक है। इनमे जिनसेन का सस्कृत हरिवशपुराण महत्वपूर्ण कृति है। यश कीर्ति, श्रुतकीर्ति आदिके कतिपय अपभ्रश कृतिया भी उल्लेखयोग्य है। बल्कि सस्कृत तथा अपभ्रश भाषाओमे केवल तीर्थंकर नेमिनाथका चरित्रप्रतिपादक कृतिया भी कई है। जैसे नेमिनिर्वाणकाव्य नेमिदूत, नेमिनाथचरित्र आदि। कन्नड भाषामे भी चम्पू, गद्य एव सागत्य रूपमे एतत्सबन्धी अनेक रचनाए मौजूद है। एतद्विषयक पहला चम्पूलेखक गुणवर्मा है। दूसरा यही कर्णपार्य है। तीसरा नेमिचन्द्र है। पर नेमिचन्द्रका नेमिनाथपुराण असमग्र है। बन्धुवर्मा तथा कवि महाबलने भी चम्पूरूपमें ही इस पुराणकी रचना की है। सागत्यमे रचित कवि मगरसका नेमिजिनेशसगति भी इस विषयका एक उल्लेखार्ह कृति है। एतद्विषयक गद्यरूप कृतियोमे चावुडराय का त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण प्रमुख है। सम्भव है कि इसने षट्पदिमें भी लिखा हो। पर अभीतक इसकी दूसरी रचना नहीं मिली है।

कर्णपार्यके नेमिनाथपुराणमें निम्नलिखित स्थलोंका वर्णन विशेष चित्ताकर्षक हैं

लोकाकारकथन, देश-निवेशवर्णन, पुण्डरीकिणिनगरका ऐश्वर्य वर्णन, राज्यवैभववर्णन, देवगतिवर्णन, + नेमिनाथका गर्भावतरणवर्णन, जन्मभिषेकवर्णन,× वैराग्यवर्णन, दानमहिमावर्णन, तपोवर्णन, केवलज्ञानोत्पत्तिवर्णन, समवसरणवर्णन, ● निर्वाणवर्णन, प्रद्युम्नकुमार, पाण्डव एव बलदेव इनका तपोवर्णन। ॰ देवगति तथा तपोवर्णन इसमें जहा तहां प्रचुरपरिमाणमें आया है। यह हुआ काव्य का उल्लेखनीय वर्णनस्थल। अब लीजिये काव्यके रसको।

यह तो निर्विवाद बात है कि शान्त ही जैन काव्य एवं पुराणो का प्रधान रस है पर यह भी एक सर्वसम्मत विषय है कि काव्यनिबद्ध असहाय किसी एक ही रससे आस्वादकोको सन्तोष नही हो सकता है। इसी लक्ष्यसे प्रधान शान्तरसके साथ साथ जैन पुराण एव काव्योमें श्रृगार आदि

+ 'नेमिनाथपुराण' आश्वास १.

× 'नेमिनाथपुराण' आश्वास ८

● 'नेमिनाथपुराण' आश्वास १३.

॰ 'नेमिनाथपुराण आश्वास १४.

शेष रस भी प्रकरणानुकूल उचित मात्रामे निबद्ध कर दिये जाते हैं फिर भी पुण्यहेतु शान्तरसप्रधान काव्योमें पाप-हेतु श्रृंगारादि रस–जिस प्रकार सिद्धरसके स्पर्शसे लोह सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार शान्तरसके सम्पर्कसे श्रृंगारादि रस भी पुण्यहेतु बनजाते हैं– यो महाकवि नागचन्द्र का मत है। इस नियमानुसार इसमे भी शान्तरसका स्थायी-भाव निर्वेद तथा शान्तरस विशेषरूपसे वर्णित है।

प्रथमाश्वासमे नागदत्त, इभकेतु और प्रीतिमति चिता-मतियोका वैराग्य, द्वितीयाश्वासमे अर्हद्दास, अमितगामी, अमिततेज और सुप्रतिष्ठका वैराग्य, तृतीयाश्वासमे शंतनु और पाण्डु-कुंतियोका श्रृगार, सुप्रतिष्ठके उपसर्गमें करूण, चतुर्थ तथा पचम श्वासम जहा तहा वसुदेवके प्रवासमें स्मशानसम्बन्धी वर्णनमे भीभत्स, विवाहोमे श्रृगार, षष्ठा-श्वासमे कंसके चरित्रमे मात्सर्यादि भावोके साथ वीररस, सप्तमाश्वासम हास्य, वीर, श्रृगार और अद्भुतके साथ साथ नेमिनाथके गर्भावतरण तथा जन्माभिषेक आदिमे भक्तिके साथ अद्भुत, आगे नवमाश्वाससे लेकर द्वादशाश्वास तक कौरव और पाण्डवोके चरित्रमे मात्सर्यादि भावोके साथ रौद्र, बलदेव, वासुदेव, जरासध, कुरु और पाण्डवोके युद्धमें वीर, खास कर द्वादशाश्वासके अन्तमे वीर तथा रौद्र, त्रयो-दशाश्वासके आदिमे श्रृगार और अतमें शुद्ध शान्त, चतु-

१२शाश्वासमें प्रारम्भमें शान्त, बाद बलदेवके प्रलापमें करुण, एवं अन्तमें निर्मल शान्तरसका प्रवाह अनर्गल रूपसे बह चला है।

कर्णपार्य 'वाक्य रसात्मकं काव्यम्' इस पूर्व संप्रदायका पक्का अनुयायी था। इसी लिये कथा भाग एव रसकी ओर इसका जितना लक्ष्य था उतना वर्णन और अलकारकी ओर नही था। इसके काव्यमे वर्णन तथा अलकार बहुत कम है। कविके अधिकाश पद्योमे व्यत्यनुप्रास नामक शब्दालकारही दृष्टिगोचर होता है। * उपमा दृष्टान्त, रूपक, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास आदि अर्थालकारके उदाहरण सीमित मात्रामे ही मिलते है। इनमे भी खास कर कविको उपमालकार ही अधिक प्रिय था। ☞

अब कर्णपार्यकी शैलीको लिजिये। इसकी शैलीमे विशेषत पाञ्चाली तथा वैदर्भी रीति ही प्रधान है। हा, जहा तहा वीर, भीभत्स तथा रौद्र रसके अनुकूल गौडी

---

* 'नेमिनाथ पुराण' अश्वास ६, पद्य ३४, अश्वास ७, पद्य १३१, आश्वास ८ पद्य १३०, आश्वास ११, पद्य ९९; आश्वास १२, पद्य ११८, १२७ और १५६.

☞ इसके लिये आश्वास १०, ११, १२ विशेष अवलोकनीय है।

वृत्ति भी अवश्य मिलती है। * स्वतन्त्र होता हुआ भी कर्ण-पार्यने प्राचीन संस्कृत तथा कन्नड कवियोका भाव जहां तहां अवश्य लिया है। इससे कविके पाण्डित्यमे कोई कमी नहीं आती है। प्रतिपाद्य विषय को सुरुचिपूर्ण बनानेके लिये इसने सस्कृतके व्यावहारिक वाक्यो एव कहावतो को जोडकर विषय को सुन्दर बनाया है।

कर्णपार्य ने प्राचीन व्याकरण-नियमो को अवश्य पाला है। फिर भी अनेकत्र नूतन कन्नडके रूप भी प्रविष्ट हो गये है। अन्यान्य जैन कवियों की तरह इसने भी मतविचारको अलग रख कर वैदिक पुराणोमे वर्णित त्रिमूर्ति, समुद्रमथन, इस मथनसे लक्ष्मी की उत्पत्ति आदि बातोको उपमान-दृष्टान्तके रूपमे स्वीकार किया है।

नेमिनाथपुराणके कथा शरीरमे सिर्फ नेमिनाथका चरित्र शुद्ध जैन सम्प्रदायसिद्ध है। शेष बलदेव-वासुदेवका चरित्र वैदिक भागवत कथासे, कौरव-पाण्डवोका चरित्र वैदिक महाभारतकी कथासे बहुत कुछ मिलता है। इसमे उल्लेखनीय बात यह है कि वैदिक पुराणमे देवकीके विवाहके पूर्व वसु-देवका चरित्र कुछ भी नही मिलता है। हा, यहापर इसके चरित्रके विषयमें काफी प्रकाश डाला गया है। वह संक्षे-पमे इस प्रकार है--

---

* 'नेमिनाथपुराण' आश्वास १२, पद्य २७३ आदि

वसुदेव समुद्रविजय आदिका छोटा भाई था। वह बडा सुन्दर था। वसुदेव जब शहरमें घूमने निकलता था तब नगरकी स्त्रियां मुग्ध हो कर अपने घरके कामको ही भूल जाती थी। इस बातकी शिकायत समुद्रविजयके पास पहुंची। विवश हो उसने उपायान्तरसे वसुदेवको उद्यानमें निर्बन्धमें रखा। वसुदेव इस रहस्यको एक दासीसे मालूम कर एक रोज रात्रिमें विद्यासाधनके बहानेसे यह स्मशानमे जाता है और वहासे देशसचारार्थ निकल पडता है। इस सचारमें वसुदेव स्वयवर-पूर्वक अनेक कन्याओको स्वीकार कर लेता है। वह अतमे रोहिणीके स्वयवरमें उपस्थित युद्धमें समुद्र-विजयको मालुम होनेपर स्वनगरमें लोटता है और वही सुखपूर्वक रहने लगना है।

उग्रसेन तथा पद्मावतीका पुत्र कस जिस समय माताके गर्भमे आता है उसी समय वह पिता उग्रसेनकी छातीके मासको खानेकी दोहद माताको उत्पन्न करता है। इसीसे उग्रसेन लडकेको पैदा होते ही उसे एक सन्दूकमें रख कर नदीमें बहा देता है। मद्यविक्रेता एक स्त्री उस सन्दूकको पाकर लडकेको कस यह नाम रखकर सावधानीसे पालने लगती है। बाल्यमे विशेष उपद्रव मचानेके कारण कस घरसे निकाले जाकर वसुदेवके पास आकर धनुर्विद्या सीखता है। चक्री जरासधके प्रतिज्ञानुसार कंस वसुदेवके साथ दुष्ट सिंहरथको बन्दी बनाकर चक्रीकी पुत्री जीवजसासे विवाह करता है और जरासधकी ही सहायतासे अपने पिता उग्रसेनको जेलमें

रखकर अपने चाचाकी पुत्री देवकीका विवाह वसुदेवके साथ कर देता है। देवकीके पुत्रसे अपनी मृत्यु जान कर उसकी छहो सन्तानोको वह मार डालता है। अन्तमे वसुदेव सातवी सन्तान श्रीकृष्णको नन्दगोकुलके नन्दगोपकी पुत्रीके परिवर्तनसे बचा लेता है। कस पूर्वजन्मार्जित अपने विद्याबलसे नन्दके घरपर बढनेवाले कृष्णको मारनेके लिये सकल प्रयत्न करता है। उस प्रयत्नमे वह असफल हो कर अन्तमे कृष्णके द्वारा स्वय मारा जाता है।

इस समाचारको सुनकर जरासघ यादवोके दमनके लिये सेनाके साथ पुत्र कालयवनको ४१ बार भेजता है। चक्रीके उपद्रवसे तग होकर अन्तमे कृष्ण मथुराको छोडकर समुद्र-मध्यस्थ द्वारावती नगर बनवा कर नेमिनाथके साथ सुखसे रहने लगता है। इधर जरासघ समुद्रव्यापारार्थ गये हुये एक व्यापारीसे इस समाचारको पाकर नारदके द्वारा वसुदेवको युद्धके लिये आमन्त्रित कर जरासघ ससैन्य कुरुक्षेत्रमे युद्धके लिये सन्नद्ध होता है। उधर कौरव और पाण्डवोमे बाल्यसे ही द्वेष था, इसलिये द्यूतमें कौरव पाण्डवोके राज्यको छीन कर उसे उन्हे वापस न देनेपर दोनोमे युद्ध आरभ होता है। इस युद्धमे पाण्डव श्री कृष्णके पक्षमे, कौरव जरासघके पक्षमे आ मिलते है। युद्धमे जरासघ, कौरव आदि मारे जाते है। श्री कृष्ण और पाण्डव आदि विजयी होकर अपने अपने राज्यमे जाकर चक्रवर्तीके रूपमे राज्य करते है।

श्रीमान् आर. नरसिंहाचार्यका कहना है कि दुर्गसिंह (ई. सन् लगभग ११४५) के पंचतंत्रसे 'मालतीमाधव' और दोड्डय्य (ई. सन् लगभग ११२०) के चन्द्रप्रभपुराणसे 'वीरेशचरित' नामक कर्णपार्यके दो और ग्रंथोंका पता लगता है। पर एच शेष अय्यंगार कहते हैं कि पंचतंत्रके रचयिता दुर्गसिंहके द्वारा स्मृत कर्णपार्य नेमिनाथपुराणके रचयितासे भिन्न दूसरा ही प्राचीन कवि है। हां, दोड्डय्यके द्वारा स्मृत कर्णपार्य अवश्य नेमिनाथपुराणका रचयिता है। बल्कि इस कर्णपार्यके द्वारा वीरेशचरितके रचे जानेकी बातको जयनृपकाव्य आदिके रचयिता मगरस (ई सन् १५०८) ने भी अपने नेमिजिनेशसंगतिमे स्पष्ट उल्लेख किया है। × बहुत कुछ संभव है कि यह वीरेशचरित श्रीमहावीर स्वामीका चरित्र प्रतिपादक कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ हो। इसका निर्णय तो ग्रंथकी प्राप्तिसे ही हो सकेगा।

नेमिनाथपुराणके रचयिता कर्णपार्यकी स्तुति रुद्रभट्ट (ई. सन् लगभग ११८०,) अण्डय्य (ई सन् लगभग १२३५), मगरस (ई. सन् १५०८), और दोड्डय्य (ई सन्. लगभग १५५०) आदि कई मान्य कवियोंने की है। इसमें संदेह नहीं है कि कर्णपार्य वस्तुत उल्लेखार्ह कन्नड महाकवियोमे अन्यतम है। इसका नेमिनाथपुराण निस्सन्देह एक सुन्दर कृति है।

कविने अपनी कृतिमे पूर्व कवियोमे सिर्फ पोन्न, रन्न पंप तथा नागचन्द्रकी प्रशंसा की है। मालूम होता है कि कर्णपार्यकी दृष्टिमे ये ही कवि प्रशंसापात्र है।

× नेमिनाथपुराणकी प्रस्तावना पृष्ठ ८–९

नागवर्म (द्वितीय)

(ई. सन् लगभग ११४५)

'काव्यावलोकन' 'अभिधानवस्तुकोश,' कर्णाटक भाषा-भूषण' एवं 'छन्दोविचिति' इसकी कृतियां हैं। कवि जन्न (ई. सन् १२०९) के कथनानुसार इसका एक जिनपुराण भी होना चाहिये। पर वह अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ है। नागवर्माको नाकिग और नाकि ये नाम भी थे। * यह जैन ब्राह्मण था। ● इसका पिता दामोदर था। + कविको अभिनव शर्ववर्मा, कविकर्णपूर, कवितागुणोदय तथा कविकण्ठाभरण ये उपाधियां प्राप्त थीं। ≈ आचण्ण (ई सन् लगभग ११९५) जन्न (ई सन् १२०९) साल्व (ई सन लगभग १५५०) और देवोत्तम (ई सन् १६००) आदि कवियोंने इसकी स्तुति की है। कविने अपनी रचनाओंमें अनेकत्र अपनेको एक असाधारण पण्डित व्यक्त करता हुआ अनेक राजसभाओंमें अग्रपूजा पानेकी बातको प्रगट किया है। इसके अतिरिक्त 'जितबाण' इस प्रशस्तिगत पद्यमें श्लेषभंगीसे संस्कृतके सुप्रसिद्ध कवि बाण, मयूर माघ गुणाढ्य दण्डी और धनंजयकी कविताओंसे अपनी कविताको श्रेष्ठ बतलाया है। संभव है कि इसने कई उत्तम काव्योंकी रचनाकी हो।

---

* 'अभिधानवस्तुकोश' पद्य, ३६ (नानार्थकाण्ड)

● 'काव्यावलोकन' की प्रशस्ति

+ 'कर्णाटक कविचरिते' भाग १, पृष्ठ १४४.

≈ 'काव्यावलोकन' और 'वस्तुकोश'

नागवर्माने आपनी कृतियोमें कही भी स्वदेश, स्वकाल आदिके सम्बन्धमें कुछ भी सकेत नही किया है। ऐसी अवस्थामें कविके जन्मस्थानके सम्बन्धमे इस समय मौनावलबनके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नही है। हां, कालके बारेमें इसकी कृतियोमे स्मृत कवि एवं काव्योके आधार पर कुछ विचार किया जा सकता है। नागवर्माके द्वारा अपने ग्रथोमें स्मृत अन्यान्य कवियोके कालके अधारपर यह १० वी शताद्वीके बाद का सिद्ध होता है। बल्कि यह बात अपने काव्यावलोकनमें लक्ष्यरूपमें उदाहृत पप, पोन्न तथा रन्न अदिके पद्यों से भी पुष्ट होती है। इसके लिये एक और बलिष्ट प्रमाण यह है कि नागवर्माने अपनी कृतिमें नयसेन का नाम स्पष्ट रूपसे लिया है। नयसेन का काल ई. सन् १११२ निश्चित है। इससे तो नागवर्मा १० वी शताब्दीके बादका ही नही, बल्कि ११ वीं शताब्दीके बाद का सिद्ध होता है!

अस्तु, नागवर्माके समयनिर्णयके लिये तरदद्दुद उठाने की जरूरत नही है। क्योंकि जन्नने अपने अनतनाथपुराणमें जगदेकमल्लके यहा कटकोपाध्याय पदपर आसीन, अभिनव शर्ववर्मा उपाधिधारी नागवर्माको अपना उपाध्याय बतलाया है।× अभिनव शर्ववर्मा उपाधिधारी नागवर्मा काव्यावलोकन आदिका रचयिता यही नागवर्मा है।* कवि जन्नका सयय ई १२०९ निश्चित है। क्योंकि इसनेअपने यशोधर चरित, की रचना वीर बल्लाल (ईसन् ११७३–१२२०) के शासनकालमे शुक्ल संवत्सरमें अर्थात् १२०९ और अनन्तनाथ पुराण की रचना

× 'जननाथं जगदेकनल्लि कटकोपाध्यायनानागवर्मनिदानांतनशर्ववर्मने मडं जन्नंगुपाध्याय ॥'

* 'काव्यावलोकन'

उसके पुत्र वीरनरसिंह (ई सन् १२२०-१२३५) के शासन-कालमें विकृत सवत्सरमे अर्थात् ई सन १२३०में की है।=

अब देखना है जगदेकमल्ल का समय। श्रीमान् एच. शेष अय्यगारके मतसे चालुक्य शासकोमे इस नामके दो शासक हुये है।– पहला ई सन् १०१५ से १०४२तक शासन करने वाला— और दूसरा ई सन् ११३६ से ११५१ तक।० पर कवि नागवर्मा बहुधा से दूसरे जगदेकमल्लके शासनकालमे ही उसके दरबारमे कटकोपाध्याय जसे उच्च पद पर आरूढ था। हां, यह अनेकोपाधिधारी जन्नका उपाध्याय, स्वाश्रयदाता जगदेक मल्लके मरण परान्त अपनी वृद्धावस्थामें रहा होगा। बल्कि अनन्तनाथपुराण की रचनाकालमें नागवर्मा स्वर्गासीन हो गया था। इसीलिये उस समय महाकवि जन्नके लिये कवि सुमनोबाण को अपना उपाध्याय चुनना पडा। जन्न ने जननाथ आदि अपने पद्यमे इस बात को प्रकट किया भी है।

नागवर्माने अपने ग्रथोमे पूर्व कवियोमे नयसेन, ✓ हरिपाल, – गुणवर्मा, पप, ≠ नागवर्मा (प्रथम), गुणवर्मा (प्रथम) और शखवर्मा ऽ आदि कवियोको स्मरण किया है। साथ साथ ही इसके काव्यावलोक तथा भाषाभूषणमे

= 'कर्णाटक कविचारिते' भाग १, पृष्ठ ३२९-३३०

– 'वस्तुकोश' की प्रस्तावना पृष्ठ १५

। इसका अपर नाम जयसिंह है।

० वह पेर्मा जगदेकमल्लके नामसे प्रसिद्ध था। आर नरसिंहाचार्यके मतसे इसका समय ई सन् ११३८से ११५०तक है।

✓ 'भाषाभूषण' सूत्र ७४

– 'भाषाभूषण' सूत्र ६९

≠ 'भाषाभूषण' सूत्र १९२

ऽ 'काव्यावलोकन'

पोन्न रन्न, दुसरज और नागचन्द्र (अभिनवपंप) आदि कवियोंकी कृतियोंसे बहुतसे पद्य उद्धृत है। नागवर्माके उपलब्ध ग्रथो का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है।

१ काव्यावलोकन-यह अलकार शास्त्र है। इसमें प्रारम्भमे व्याकरण भी सग्रह रूपमे कहा गया है। प्रस्तुत रचनामें सूत्रोको पद्यरूपमे लिख कर लक्ष्यके लिय पूर्व कवियोकी कृतियोसे पद्य उदाहृत है। ग्रथमे निम्न लिखित पाच अधिकार है।

१शब्दस्मृति २ काव्यमलव्यावृत्ति ३ गुणविवेक ४ रीतिक्रमरसनिरूपण और ५ कविसमय। इनमें शब्दस्मृति ही व्याकरण भाग है। इसमें (१)सधि (२)नाम(३)समास(४) तद्धित और (५) आख्यात इस प्रकार पाच अध्याय है। काव्यमलव्यावृत्तिमे (१)पदपदार्थ सधिदोषविनिश्चय और (२) वाक्यवाक्यार्थदोषानुकीर्तन इस प्रकार दो प्रकरण है। गुणविवेकमें (१) मार्गविभागदर्शन (२) शब्दालंकारनिर्णय और (३) अर्थालकार इस प्रकार तीन प्रकरण है। रीतिक्रमरसनिरूपणमें (१) रीतिभाग और (२) रसभाग इस प्रकार दो विभाग है। कवि समयमें (१) असदाख्याति (२) सत्कीर्तन (३) नियमार्थ और (४) ऐक्य इस प्रकार चार विभाग है। कविने अपने ग्रथकी बडी तारीफ की है। ग्रथके प्रारभमे इसने भगवान् वर्धमान तथा सरस्वतीकी स्तुति की है। अधिकरणोके अतमें निम्न गद्य मिलता है-

सकलसुकविजनमन सरोजिनीराजहसायमानानूनकवितागुणोदय श्रीनागवर्मविरचित।

२ कर्णाटक भाषाभूषण-यह कन्नड व्याकरण-ग्रथ है। इसमें सूत्र तथा वृत्ति सस्कृत भाषामें रच कर पूर्व कवियोके

ग्रंथोंसे उदाहरण दिये गये हैं। इसमें कुल २६९ सूत्र हैं।*
ग्रंथ (१) संज्ञा (२) सन्धि (३) विभक्ति (४) कारक
(५) शब्दरीति (६) समास (७) तद्धित (८) आख्यात,
नियम (९) अव्ययनिरूपण और (१०) निपातनिरूपण इस
प्रकार १० परिच्छेदोंमें विभक्त हैं। कन्नड व्याकरण सम्बन्धी
ज्ञातव्य अंश इसमें सुलभ शैलीमे संग्रह रूपमें सुन्दर ढंगसे
कहा गया है। इसका प्रारंभिक पद्य इस प्रकार है—

सर्वज्ञं तदहं वन्दे परं ज्योतिस्तमोपहम्।
प्रवृत्ता यन्मुखाद्देवी सर्वभाषा सरस्वती।
अन्तिम पद्य यह है।
'कर्णाटशब्दसूत्राणि लोकव्युत्पत्तिहेतवे ॥
रचितानि स्फुटार्थानि कृतिना नागवर्मणा ॥

३ अभिधानवस्तुकोश—यह कन्नडमें उपयोग किये
जाने वाले संस्कृत शब्दों का अर्थ बतलानेवाला पद्यरूप
संस्कृत-कन्नड कोश है। इसमें एकार्थकाण्ड, नानार्थकाण्ड
और सामान्यकाण्ड इस प्रकार तीन काण्ड और १७ सर्ग
हैं। पद्य ८०० हैं। कवि का कहना है कि वररुचि, हलायुध
भागुरि, शाश्वत, अमरसिंह और धनंजय आदिके कोशोंको
देखकर मैंने इस कोशकी रचना की है। यद्यपि यह कोश कन्द
वृत्तोंमे रचा गया है। फिर भी इसमें संस्कृतके प्रसिद्ध वृत्त उत्पल-
माला, शार्दूल, स्रग्धरा महास्रग्धरा, मत्तेभ, चंपकमाला,
मालिनी, मन्दाक्रान्ता वसंततिलका, शालिनी, शिखरिणी, हरिणी,
प्रहर्षिणी, वंशस्थ और उपेन्द्रवज्रा नामक समवृत्त, अर्धसमवृत्त
तथा उपजाति वृत्तोंके अतिरिक्त कन्नड भाषाके अक्कर और
त्रिपदि आदि जहां तहां मौजूद हैं।

---

* यह सूत्रसंख्या द्वितीय मुद्रणकी अपेक्षा से है।

सोमनाथ (लगभग सन् ११५०)

इसने 'कल्याणकारक' लिखा है। मालुम होता है इसे विचित्रकवि यह उपाधि प्राप्त थी। सोमनाथने लिखा है कि मेरे इस ग्रथको सुमनोबाण तथा अभयचद्र सिद्धान्तीने शोधा है। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि कवि सुमनोबाण का समकालीन था। सुमनोबाण का काल इ स लगभग ११५० है। सोमनाथ के इस काल की पुष्टि इ सन लगभग १८३५ मे उत्कीर्ण श्रवणबेलगोल के एक शिलालेख (न ३८४) से भी होती है। इस लेख मे गंगराज के पुत्र बोप्प के गुरू माधव चद्र का उल्लेख है। इन्ही माधवचन्द्र की स्तुति सोमनाथ ने अपने ग्रंथ मे की है। इसलिये आर नरसिंहाचार्य के मतानुसार सोमनाथ का समय ई सन् लगभग ११५० है।

कल्याणकारक वैद्यक ग्रथ है। यह आचार्य पुज्यपाद-कृत, इसी नाम के ग्रथका अनुवाद है। सोमनाथ ने बाहट, सिद्धसार चरक आदि के वैद्यक ग्रथो से पुज्यपाद के कल्याणकारक को श्रेष्ठ बतलाया है। साथ ही साथ इसने यह भी कहा है कि कल्याणकारक की चिकित्सा मे मद्य मास और मधु वर्जित है।

ग्रथ के प्रारभ मे तीर्थंकर चद्रनाथ की स्तुति है। बाद कविपरमेष्ठी, सरस्वती, माधवचद्र, सिद्धान्तचक्रवर्ती, अभय-चद्र तथा कनकचद्र पण्डित देव की स्तुति की गई है। कवि सोमनाथ के द्वारा स्तुत उपर्युक्त माधवचद्र, अभयचद्र तथा कनकचद्र ये तीनो समसामयिक तथा इनमे से माधवचद्र त्रिलो-कसार के टीकाकार और अभयचन्द्र गोम्मटसार की मदप्रबो-धिका टीका के रचियता मालूम होते है। त्रिलोकसार के

टीकाकार माधवचन्द्र आचार्य नेमिचन्द्र के शिष्य समझे जाते है। मूल ग्रथ मे भी इनकी कई गाथाए सम्मिलित है। बल्कि सस्कृत टीका की उत्थानिकासे ज्ञात होता है कि गोम्मटसार मे भी इनकी कई गाथाए सग्रह की गई है। सस्कृत गद्यमय क्षपणसार भी जो कि लब्धिसार मे शामिल है, इन्ही माधव-चन्द्र का है।

प नाथूरामजी प्रेमी की राय से गगनरेश राचमल्ल के महामात्य चावुण्डराय, गोम्मटसार और त्रिलोकसार के रचयि-ता सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र एव उनके सहयोगियो-- वीरनदी इन्द्रनन्दी, कनकनदी और माधवचन्द्रका समय विक्रम की ११ वी शताब्दी का पूर्वार्ध है। ०

कीर्तीवर्मा (ई सन् ११२५) के 'गोवैद्य' को छोडकर आज तक के उपलब्ध कन्नड वैद्यक ग्रथो मे यही प्राचीन है। इसके अध्यायान्त मे यह गद्य मिलता है-- विचित्रकवि जगद्दल सोमनाथविरचित। यह ग्रथ यथाशीघ्र प्रकाशनीय है।

वृत्तविलास (ई. सन ११६०)

इसने धर्मपरीक्षा लिखी है प्राक्काव्यमालिका मे प्रकाशित 'शास्त्रसार' के कुछ अशोसे पता चलता है कि इसने शास्त्रसार नामक और भी ग्रथ रचा है। कविने अपनी रचनामे अपने सबधमे कुछ भी नही लिखा है। इसलिए इसके कालनिर्णयके लिये सिर्फ एक ही मार्ग रह जाता है। वह यह है कि कवी के द्वारा स्तुत गुरु-परपरा। इस गुरु परपरामे

---

० जैनसाहित्य और इतिहास पृष्ठ३००

व्रती, शुभकीर्ति, सैद्धांतिक माघनन्दी, यति भानुकीर्ति, धर्म-भूषण, वच्छिव्य, अमरकीर्ति तथा वादीश्वर अभयसूरि ये स्मरण किये गये हैं। कविके द्वारा स्तुत इन व्यक्तियोंक कालके आधार पर ही कवी का काल निर्धारित करना होगा।

श्रीमान् आर. नरसिंहाचार्यने उपर्युक्त व्यक्तियोके कालके आधारपर वृत्तविलास का काल ई. सन *११६० अनुमान* किया है।कविके विषयमे विशेष बातोका कुछ भी पता नही लगता है। इतना पता अवश्य लगता है कि इसके श्रद्धेय गुरु अमरकीर्ति थे। आचार्य अमितगतिकृत सस्कृत धर्मपरीक्षाको ही वृत्तविलासने कन्नड भाषाभाषियोके उपकारार्थ कन्नड मे रचा है। इस बातको कविने अपने एक पद्यमे स्वय व्यक्त किया है।

धर्मपरीक्षा चम्पूग्रथ है। इसमे दश आश्वास है। ग्रथकी शैली सुगम एव ललित है। कथा कहनेका ढग भी चित्ताकर्षक है। हा कुछ समय के बाद वृत्तविलास की यह धर्मपरीक्षा सामान्य जनता को कुछ कठिन मालूम हुई। इस-लिये स्थानीय श्रावकोने श्रवणबेलगोलके तत्कालीन मठाधीश चारुकीर्तिसे इसकी कन्नड व्याख्या तैयार करानेके लिये प्रार्थ-ना की। इस कार्य के लिये चारुकीर्ति जीने चन्द्रसागरको आज्ञा दी। तदनुसार चन्द्रसागरजीने शा श १७७० मे सुलभ कन्नड गद्य मे इस धर्मपरीक्षा को समाप्त किया था। चन्द्रसा-गरजी की धर्मपरीक्षा मे भी दश अध्याय है। इस प्रकार अभी तक कन्नड मे धर्मपरीक्षासम्बन्धी ये ही दो - वृत्तविलास तथा चन्द्रसागर कृत ग्रथ उपलब्ध हुए है। पता नही है कि इनके अतिरिक्त भी कन्नड मे और कोई धर्मपरीक्षा है या नही।

प्राकृत, अपभ्रश और सस्कृत भाषाओ मे इसी विषयको निरूपित करने वाले धर्मपरीक्षा नाम के कई ग्रथ उपलब्ध होते है। उनमे निम्न लिखित ग्रथ प्रमुख है–

जयराम नामक कवि ने 'गाथाप्रबन्ध' मे एक धर्मपरीक्षा की रचना की थी। प्राय वह प्राकृत भाषा मे रही होगी। वह अभी तक उपलब्ध नही हुई है। इसीके आधार पर हरिषेणने अपभ्रश भाषा मे एक धर्मपरिक्षा को रचा है। मेवाड देश मे 'सिरिकजउर' के धक्कड कुलमे हरि नामक एक कलाकुशल रहा। उसका पुत्र गोवर्धन, गोवर्धन की पत्नी गुणवती थी। इन्ही का पुत्र हरिषेण है। वह कार्य–निमित्त चित्रकूट से अचल-पुर गया। वहा पर छन्दोलकार आदि सीखकर विक्रम स' १०४४ मे इस अपभ्रश धर्मपरीक्षा की रचना की। इसका गुरू सिद्धसेन था इसकी कृपा से धर्मपरीक्षा रची गई।

इसमे शक नही है कि जयराम हरिषेण से पहले का है। इसीके बाद माधवसेन के शिष्य आचार्य अमितगति ने विक्रम स १०७० मे सस्कृत धर्मपरीक्षा की रचना की। अमितगति का यह ग्रथ हरिषेण की धर्मपरिक्षा से २६ वर्ष बाद का है। जयराम का ग्रथ उपलब्ध नही हुआ है। हरिषेण का ग्रथ अभी हस्तलिखित दशा मे ही वर्तमान है। पर अमितगति की धर्मपरीक्षा मुद्रित हो चुकी है। बल्की इसका सार हिन्दी मराठी और जर्मन आदि भाषा ओ मे प्रकट हो चुका है। मुख्यत अमितगति का अनुकरण करता हुआ उसके ग्रथ से बहुतमे भागो को हूबहू लेकर विक्रम स १६६५ मे कवि पद्म–सागर ने भी एक धर्मपरीक्षा की रचना की है, जो कि मुद्रित हो चुकी है।

धूर्ताख्यान प्राकृत भाषाबद्ध एक लघुकाय ग्रंथ है। उसके रचयिता हरिभद्र हैं। यह एक महाकवि हैं। इनका काल ८ वी शताब्दी है। इन्होने सस्कृत एव प्राकृत भाषाओ मे अनेक महत्वपूर्ण ग्रथोकी रचना की है। हरिभद्र एक विच-क्षण कवि ही नही थे, किंतु अप्रतिम नैय्यायिक तथा कुशल कथाकार भी। डा उपाध्ये के शब्दो मे धूर्ताख्यान सिर्फ एक कलाकृति है, न कि धर्मोपदेशक ग्रथ। हरिभद्रने एकही तरह की कथाओ को हिन्दू पुराणो से सग्रह कर उन कथाओ की असबद्धता को स्पष्ट किया है। पुराणो के दोष प्रकट होनेसे उन पर का विश्वास क्रमश कम हो जाना स्वाभाविक है। असबद्ध कथाओं एव उनपर विश्वास करने वालो के अन्ध-विश्वास का उपहासात्मक विडम्बन हरिभद्र ने इस ग्रथ मे बडी कुशलता से किया है।

भारतीय वाडमय मे सम्पूर्ण विडम्बनात्मक कृतिया दुर्लभ है। भाण-प्रहसन आदि मे विडम्बन मिलता है अवश्य। अन्य कतिपय धर्मग्रथो मे भी यह पाया जाता है। किंतु धूर्ता-ख्यान सदृश अमौलिक विचार एव बौद्धिक उपहासमिश्रित शुद्ध विडम्बनात्मक ग्रथ भारतीय प्राचीन वाडमय मे दूसरा नही है। धर्माभिनिवेश को त्याग कर प्राचीन वाडमया-भ्यासियोके लिये प्राचीन वाडमय मे यह एक दुर्लभ रत्न है। धूर्ताख्यान की भाषा सरल है। साथ ही साथ प्राचीन भी।

इसमे शक नही है कि हरिभद्र का धूर्ताख्यान एक महत्वपूर्ण ग्रथ है। मेरा खयाल है कि इसका हिंदी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। वास्तव मे वृत्तविलास की धर्म-परीक्षा की पार्श्वभूमि के स्पष्ट ज्ञान के लिये अमितगति की

धर्मपरीक्षा तथा हरिभद्र के धूर्ताख्यान का परिशीलन परमावश्यक है। इन ग्रथो का सार इस समय मै यहा पर नही दे रहा हूं। क्योकि इससे प्रस्तुत परिचय का कलेवर अधिक बढ जाएगा। यह मुझे अभीष्ट नही है। बल्कि हिन्दी भाषाभाषी जनता उपर्युक्त ग्रथो के परिचय के लिये उन ग्रथो को ही आसानी से देख सकती है। हा वृत्तविलास की धर्मपरीक्षा का आरभ यो होता है-

मनोवेग और पवनवेग नामक राजकुमार पाटलिपुर जाकर ब्रह्मालयस्थ नगाडे को बजाकर वहा के सिहासन पर बैठ जाते है। तब ब्राह्मण विद्वानो ने उनसे यह कहा कि जो विद्वान इस नगाडे को बजाकर शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त करते है, वे ही इस सिहासन पर बैठने का अधिकार होते है। कृपया आप लोग बतलावे कि आप किस विषय के विशेषज्ञ है। इस बातको सुनकर राजकुमारोने जवाब दिया कि हम विद्वान नही है, किंतु यो ही आकर इसपर बैठ गये है। इतना कह कर वे सिहासन के नीचे बैठ जाते है। बाद ब्राह्मण विद्वानो को कथा सुनाकर राजकुमारोने उनके धर्मको अनेक प्रकार से निरसन कर जयपत्र को प्राप्त करके जैन धर्म की उत्कृष्टता (को) प्रकट करते है।

नेमिचद्र (ई. स. लगभग ११७०)

यह लीलावति तथा नेमिनाथपुराण का रचयिता है। इसने लीलावतिके अन्तमे राजा लक्ष्मण का उल्लेख किया है। इसी लक्ष्मण को कर्णपार्य (ई सन ११४०) ने अपने नेमिनाथपुराण मे भी स्मरण किया है। और नरसिंहचार्य की राय है कि कर्णपार्यके कालमे लक्ष्मण स्वय शासक नही रहा। उस

समय प्राय इसका पिता या भाई विजयादित्य शासन करता रहा। हा, उपर्युक्त उल्लेखसे स्पष्ट होता है कि कवि नेमिचद्र के काल मे शासन का भार लक्ष्मण के हाथ मे ही था। इसलिये नेमिचद्र का काल कर्णपार्य से करीब ३० वर्ष बाद ई सन ११७० मानना समुचित है। इसके लिये एक और सुदृढ प्रमाण है। नेमिचद्रने अपने नेमिनाथपुराणमे स्पष्ट लिखा है कि यह ग्रथ वीरबल्लालके प्रधान पद्मनाभ के लिये रचा गया है। वीरबल्लालका समय ई सन ११७३ से १२२० तक है। इसलिये नेमिचद्रका काल ई. सन ११७० मानना निर्हेतुक नही है।

नेमिचद्र को आगिकनेमि यह उपनाम तथा कलाकान्त कविराजमल्ल, कविधवल, शृगारकारागृह, कविराजकुजर, साहित्यविद्याधर, विद्यावधूवल्लभ, सुकविकण्ठाभरण, विश्वविद्याविनोद, भारतीचित्तचोर, चतुर्भाषाकविचक्रवर्ती, सुकरकविशेखर, कृतिकुलदीप, वाग्वल्लकीवैणिक आदि उपाधिया प्राप्त थी। इसने पूर्व कवियोमे सिर्फ समन्तभद्र, अकलक और पूज्यपाद को स्मरण किया है। जन्न (ई सन १२०९) पार्श्व (ई सन १२०५) कमलभव (ई सन १२३६) मधुर (ई सन १३८५) मगरस (ई सन १५०८) और कवि बाहुबलीने इसकी स्तुती की है।

कलाधर, सत्कवीशचूडामणि, चिदग्धविद्याधरेद्र अखिलकलाकोविद, उचितशब्दविद्यासदन, कविचक्रवर्ती, भुवनाभरण, सुकरकविशेखर, तार्किकतिलक, मानमेरु जिनशासनदीपक, अकलक, भावकमुकुर और अप्रतिमल्ल आदि विशिष्ट शब्दोके द्वारा कविने अपने कविचातुर्य तथा गुणो को स्वयं व्यक्त किया है।

नेमिचद्र की लीलावति एक चम्पू ग्रथ है। इसमे १४ आश्वास हैं। इसे मगरसने शृगारकाव्य बतलाया है। बल्कि रचयिताने स्वय इस बातको अपनी कृतिमे अभिव्यक्त किया है। कवि का कहना है कि इसे मैने सिर्फ एक ही सालमे समाप्त किया है। इस काव्यका कथासार इस प्रकार है-

कदम्ब राजाओकी राजधानी जयन्तीपूर अथवा बनबासिमे चूडामणि नामक राजा था। इसकी महिषी पद्मावती थी। इनका पुत्र कन्दर्प था। मत्री गुणगधका पुत्र मकरन्द राजकुमारका घनिष्ठ मित्र था। युवराज कन्दर्प एक दिन रात्रि मे स्वप्न मे एक स्त्री को देखता है और दूसरे ही दिन मकरन्द के साथ उस स्त्रीकी ओर चल पडता है। युवराज स्वप्नमे कुसुमपुरके राजा शृगारशेखर की पुत्री लिलावती को देखता है। उधर लिलावती भी युवराज कन्दर्प को ही स्वप्नमे देखकर इसके अन्वेषणार्थ विश्वस्त अनुचरोको भेजती है। बाद इन दोनोका विवाह होकर कन्दर्प लीलावतीके साथ जयन्तीपुरमे आता है और सुखसे राज्यशासन करता है।

यह ग्रथ सुबन्धु की वासवमत्ता का अनुकरण मालूम होता है। बाहुबली (ई सन १५६०) देवचद्र (ई सन १८३८) तथा दोड्डय्य (ई सन १५५०) के मतसे नेमिचद्र की यह लीलावती कादबरी से भी उत्तम काव्य है। कादबरी कन्नड और सस्कृत भाषाओ मे उपलब्ध है। पता नही चलता है कि कवि बाहुबली और देवचद्र ने किससे इसकी तुलना की है। हा, दोड्डय्य अपने चन्द्रप्रभपुराण मे बाण का नाम अवश्य लेता है। इससे ज्ञात होता है कि इसने तो महाकवि बाणकृत कादबरी से ही नेमिचन्द्रीय लीलावति की तुलना की है।

जो कुछ हो, लीलावति की श्रेष्ठता व्यक्त करना ही उपर्युक्त कवियो का आशय मालूम होता है।

ग्रथावतार मे कविनें नेमिजिनेन्द्र, शातिजिनेद्र सिद्धपरमेष्ठी एव सरस्वती की स्तुति के उपरांत आचार्य समन्तभद्र, अकलक तथा पूज्यपाद को स्तुति की है। आश्वासो के अन्त मे यह गद्य मिलता है-

विदितविविधप्रबन्धवनविहारपरिणतपरमजिनचरणरम्यहैम्याचलोच्चलितनखमयूखमन्दाकिनीमज्जनासक्तसन्तातोत्सिक्तदानामोदमुदितबुधमधुकरप्रकरकविराजकुजरविरचित।

आर नरसिंहाचार्य के शब्दो मे इसका बध गभीर शृगाररसपूर्ण एव हृदयगम है। साथ ही साथ कवि की प्रतिभा शब्दसामग्री तथा वाग्वैखरी अन्यादृश है।

नेमिचद्र का दूसरा ग्रथ नेमिनाथपुराण है। इसमे २२ वे तीर्थंकर नेमिनाथ का जीवनवृत्त अकित है। इसे वीरबल्लाल(ई. सन् ११७३-१२२०) के प्रधान पद्मनाभने रचवाया था। ग्रथ असमग्र है। प्रायः इसीलिये यह अर्धनेमि के नाम से भी प्रसिद्ध है। शायद ग्रथ समाप्ति के पूर्व ही कवि का स्वर्गवास हुआ है। स्वय कविने इस ग्रथ की बडी प्रशसा की है। ग्रथावतार मे इसने नेमिनाथ व सिद्धपरमेष्ठि यक्ष-यक्षी गणधर आदि के बाद गृध्रपिच्छ, कुण्डकुन्द, कवि-परमेश्वर, जिनसेन, वीरसेन, गुणभद्र, पुष्पदन्त, समन्तभद्र अक-लक और पूज्यपाद की स्तुति की है। आश्वासो के अन्त मे यह गद्य पाया जाता है-

'.... मृदुपदबन्धबन्धुरसरस्वतीसौभाग्यव्यगभगीनिधानदीपवर्ति-चतुर्भाषाकविचक्रवर्ति-नेमिचद्रकृतम् श्रीमत्प्रतापचक्रवर्ति-

श्री वीरबल्लालदेवप्रसादासाधितमहाप्रधानपदवीविराजित-
सज्जेवल्ल--पद्मनाभदेवकारितमुमप्प नेमिनाथपुराण,

कवि नेमिचन्द्र सस्कृत का भी अच्छा विद्वान् था। बल्कि इसकी चतुर्भाषाकविचक्रवर्ति इस उपाधि से यह सस्कृत का ही नही, प्राकृत तथा अपभ्रश भाषा का भी अच्छा कवि ज्ञ त होता है। इसने स्वय अपने को तार्किकतिलक घोषित किया है। इससे सिद्ध होता है कि नेमिचद्र काव्य सिद्धान्त आदिके साथ साथ न्यायका भी विशेषज्ञ था।

बोप्पण (ई. सन् लगभग ११८०)

इसने अध्यात्मी बालचद्रके नियोगसे २७ कन्नड पद्यो म श्रवणबेलगोलस्थ श्री गोमटेश्वर की स्तुती की है। ये पद्य ई सन् लगभग ११८० में उत्कीर्ण न, २३४ के श्रवणबेलगोल शिलालेखमे उपलब्ध होते है। निर्वाणलक्ष्मीपतिनक्षत्रमालिका नामक इसकी और एक लघु कलेवर कृति मिलती है। सुजनो-त्तस शब्दसे समाप्त होनेवाले अनेक नीतिबोधक कद पद्य जो उपलब्ध होते है वे भी एतत्कृत मालूम होते है। क्योंकि कवि की उपाधियोमे सुजनोत्तस भी एक है। इनके अतिरिक्त इसने और किस ग्रथकी रचना की है यह पता नही है।

आर नरसिहाचार्य के अभिप्रायसे इस सुजनोत्तस और कन्नडगवि बोप्प ये दो उपाधिया प्राप्त थी। शिलालेखान्तर्गत पद्योको जब इसने अध्यात्मी बालचद्र के नियोगसे रचा है तब उसका समसामयिक होना ही चाहिये। बालचद्र का समय ई. सन ११७० है। बल्कि श्रवणबेलगोल के जिस शिलालेख म बोप्पण के पद्य उत्कीर्ण है, उस शिलालेखका समय ई सन् ११८० है। इसलिये कवि का काल लगभग यही ११८० होना

चाहिये। बोप्पण का प्रेरक उपर्युक्त अध्यात्मी बालचंद्र जिन-स्तुतीका रचयिता तथा प्राभृतकत्रय, तत्वार्थ, परमात्मप्रकाश आदि संस्कृत-प्राकृत भाषाबद्ध अन्यान्य आचार्य-प्रणीत अध्यात्म ग्रंथोका सफल कन्नड टीकाकार है। अध्यात्म ग्रंथोके टीकाकार होने के नाते ही यह अध्यात्मी बालचंद्र के नामसे प्रसिद्ध हुआ होगा। बालचंद्र, मूलसंघ, देशीयगण,पुस्तकगच्छांतर्गत कुंदकुंदान्वयी है। यह ई सन् ११७६ मे स्वर्गस्थ नयकीर्ति का शिष्य है। दामनंदी नामक इसका एक बडा भाई भी था।

समयसारव्याख्या के अन्तमें उपलब्ध होनेवाले गद्यके आधार पर आर नरसिंहाचार्यका अनुमान है कि बालचंद्रने नयकीर्तिके पुत्र (?) से विद्याध्ययन किया होगा। पर आचार्यजी का यह अनुमान मुझे ठीक नही जचता। इस पर विशेष प्रकाश डालनेकी जरूरत है। आचण्ण (ई सन् ११९५)ने अपने वर्धमानपुराणमे तथा पार्श्व (ई सन् १२०५) ने अपने पार्श्वनाथपुराणमे इस बोप्पणकी स्तुती की है। केशिराजने भी अपने शब्दमणिदर्पण मे लक्ष्य के रूपमे इसके कुछ पद्योको उद्धृत किया है। कविने विद्याजितत्रजिन, सुकविसमाजनुत, विशदकीर्ति आदि विशिष्ट शद्बोके द्वारा अपने गुणोको स्वयं व्यक्त किया है। इसके ग्रंथोमे गोम्मटस्तुती २७ वृतोकी एक छोटीसी रचना है। इसकी दूसरी कृती निर्वाणलक्ष्मीपतिनक्षत्रमालिका है। यह भी २७ वृत्तोकी लघुकाय कृति है। प्रत्येक पद्य 'निर्वाणलक्ष्मीपति' इस समस्त पदसे समाप्त होता है। ग्रंथात के पद्यसे ज्ञात होता है कि यह भव्योकी प्रेरणा से रची गयी थी। अब रह गये नीतिबोधक कंद पद्य। इसमे शक नही है कि इनमें भी कई पद्य शिक्षाप्रद हैं।

मालूम होता है कि कवि बोप्पण एक ख्यातिप्राप्त कवि था। क्योंकि पार्श्व आदि समाजमान्य कवियोंने इसकी प्रशसा की है। केशिराजने अपनी रचनाके लिये लक्ष्य रूपमे इसकी कृतियोसे पद्योको लिया है और कविने स्वय अपने को स्पष्ट ' सुकविसमाजनुत ' बतलाया है।

अग्गल (सन् ११८९)

इसने चन्द्रप्रभपुराण रचा है। यह मूलसघ, देशीय-गण, पुस्तक-गच्छ कोण्डकुन्दान्वय का है। इसका पिता शान्तीश, माता पोचाबिका और गुरु श्रुतकिर्ती त्रैविद्य है। कवि इगलेश्वरवासी मालूम होता है। आश्वासो के आद्यन्त पद्यो से ज्ञात होता है कि इसे जैनजनमनोहरचरित, वरिकुलकलभ-व्रातयूथाधिनाथ,काव्यनौकर्णधार, भारतीभालनेत्र, साहित्यविद्या विनोद, जिनसमयसरस्सारकेलीमराल, सुललितकवितानर्तकी-नृत्यरग ये उपाधिया प्राप्त थी।

अग्गल दरबारी कवि ज्ञात होता है। इसने अपने चन्द्रप्रभपुराण को शा श ११११ ई सन ११८९ मे रचा था। कविने पूर्व कवियो मे पप, पोन्न और रन्न का ही स्मरण किया है। आचण्ण (ई. सन लगभग ११९५) देवकवि (ई सन लगभग १२००) अण्डय्य (ई सन लगभग १२३५) कमलभव (ई सन लगभग १२३५) बाहुबली (ई सन लग-भग १५६०)तथा पार्श्व (ई सन १२०५) आदिने इसकी स्तुति की है।

अग्गलका चन्द्रप्रभपुराण १६ आश्वासोमे विभक्त है। बिलगि के एक शिलालेख (ई सन् १५९२) से अवगत होता है कि इस ग्रथकी रचना इसने श्रद्धेय गुरु श्रुतकीर्तिकी आज्ञासे

की थी। ग्रथावतारम्भे चन्द्रप्रभ, पञ्चपरमेष्ठी, जिनधर्म, यक्ष-यक्षी और सरस्वती आदिके बाद इसने अनुबद्ध—केवली, श्रुत-केवली, कोण्डकुन्द, भूतबलि, पुष्पदत, वीरसेन, जिनसेन, अकलक, गृध्रपिछ, अर्हद्बलि, सिहनन्दी, समन्तभद्र, कविपर-मेष्ठी, पूज्यपाद, कुलचन्द्र, माघनन्दी, कनकनन्दी, श्रुतकीर्ति, मुनिचन्द्र, नयकीर्ति, उदयचन्द्र, वीरनन्दी, माघनन्दी, वर्धमान, देवचन्द्र, दामनन्दी, नेमिचन्द्र और श्रुतकीर्तिकी, स्तुति की है।

आश्वासोके अन्तमे यह गद्य मिलता है–'' परमगुरु-न्नाथकुलकुभृत्समुदभूतप्रवचनसरित्सरिन्नाथ श्रुतकीर्तित्रैविद्यवक्र-र्वातपदपद्मनिधानदीपवर्ति–श्रीमदग्गलदेवविरचित ।'

आचण्ण (सन् लगभग ११९५)

इसने वर्धमानपुराण तथा श्रीपदाशीतिकी रचना की है। यह भारद्वाज गोत्रका है। इसका पिता केशवराज, माता मल्लाबिका और गुरु नदियोगीश्वर हैं। आर नरसिंहाचार्यका अनुमान है कि यह पुरिकरनगर अर्थात् पुलिगेरेका रहनेवाला था। वसुधैकबान्धवोपाधिधारी चमूपति रेचणकी प्रेरणासे कविका पिता केशवराज तथा तिक्कणचावण इन दोनोने मिल-कर वर्धमानपुराण लिखनेको प्रारभ किया था। परन्तु 'दैव-नियोग' से यह कार्य आगे नही बढा। बाद रेचणकी प्रेरणासे आचण्णने इसे पूरा किया।

इसे शायद वाणीवल्लभ, पपपरमगुरुपदविनत ये उपा-धिया प्राप्त थी। पार्श्व (ई सन् १२०५) ने अपने पार्श्व-नाथपुराणमे इसकी स्तुति की है। इससे सिद्ध होता है कि कवि १२०५ से पहलेका है। अपनी रचनामे पूर्व कवियोकी

स्तुति करता हुआ आचण्णने बोप्पण पण्डित (ई सन् लगभग ११८०) तथा अग्गल (ई सन् ११८९) की स्तुति की है। इससे यह भी स्पष्ट है कि यह इन कवियोके बादका है।

शिलालेखोसे ज्ञात होता है कि वसुधैकबान्धव, चमूपति रेचण पहले कलचुरियोके यहा बाद होयसल शासक वीर-बल्लाल (ई सन् ११७३-१२२०) के यहा मन्त्री जैसे उत्तर-दायित्वपूर्ण उच्च पदपर सम्मानपूर्वक आरूढ रहा। मदरास प्राच्यकोशालयस्थ एक शासनसे मालूम होता है कि कविके गुरू नदियोगीश्वर ई सन् ११८९ मे वर्तमान थे। उपर्युक्त इन सब बातोसे आचणका समय करीब ई सन् ११९५ मानना सयुक्तिक जचता है।

इसने पूर्व कवियोमे श्रीविजय, गजाकुश, गुणवर्मा, नागवर्मा, असग, हप, होन्न, अग्गल और बोप्पकी स्तुति की है। भारद्वाजपवित्रगोत्रतिलक, केशिराजात्मज, सारोदारपति-व्रतादिगुणभृन्मल्लाबिकानन्दन, तारेशोज्ज्वलकीर्ति, जैन-रुचि, निर्मलाचार, वाणीवल्लभ, जिनसमयसमुद्धरण, जिनमतसिद्धान्त-वार्धिवर्धनचन्द्र, भव्यसेव्यऔर अमलगुणगणनिलय आदि शब्दोके द्वारा कविने अपने विशिष्ट गुणोको स्वय व्यक्त किया है।

कवि पार्श्वने श्रीगुणगर्भ, कीर्तिकलागर्भ, सूक्तिसगता-ध्यात्म, जैनागमगर्भ, जगतीगुरुप्रसन्नगुण और पृथु-हृदय आदि विशेषणोके द्वारा आचण्णकी बडी तारीफ की है। इसमे सदेह नही है कि यह एक प्रौढ कवि है। आर नरसिहाचार्यके शब्दोमे इसका ग्रथ प्रास, यमक आदि शब्दालकारभूयिष्ठ है।

आचण्ण का वर्धमान पुराण अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्ध-

मान या महावीर का चरित्र प्रतिपादक एक चारित्रिक कृति है । यह १६ आश्वासोमे विभक्त है । ऊपर कहा जा चुका है कि यह ग्रथ चमूपति रेचण या रेचरस की प्रेरणासे रचा गया था । ग्रथावतार मे सर्व प्रथम वर्धमान की स्तुति है । बाद कवि, सिद्धादि, सरस्वती, यक्षयक्षी, गौतम, भूतबलि, पुष्पदन्त, गृध्रपिछ, समतभद्र, पूज्यपाद तथा अकलक की स्तुति की गई है । आश्वासोके अन्तमें यह गद्य है--

'...निखिलभुवनजनविनुत-स्फीतमहिमावदात-वीतरागसर्वज्ञतासमेत-ख्यातजिनसमयकमलिनीकलहसायमान- मानितश्रीनन्दियोगीन्द्रप्रसादवाचामहित-केशवराजानदनदन-वाणीवल्लभविस्तरित. ....'

महावीर चरित्रप्रतिपादक सस्कृत ग्रथोमे महाकवि असग (विक्रमीय ११ वी शताब्दी) का वर्धमानपुराण तथा आचार्य सकलकीर्ति (विक्रमीय १५ वी शताब्दी) का वर्धमानचरित्र ये दोनो काफी प्रसिद्ध हैं । कन्नड ग्रथोमे आचण्ण के इस वर्धमान पुराणके अतिरिक्त कवि पद्म (विक्रमीय १६ वी शताब्दी) का एक वर्धमानपुराण और उपलब्ध होता है । साहित्यिक दृष्टिसे कवि पद्म का ग्रथ भी सुन्दर है ।

अस्तु, इसमे शक नही है कि आचण्णका वर्धमानपुराण साहित्यिक दृष्टिसे एक सुन्दर कृति है । इसे प्रकाशमे लानेकी विशेष आवश्यकता है ।

आचण्ण की दूसरी रचना श्रीपदाशीति है । इसमे कविने णमोकार मत्रोकी महिमाको सुन्दर ढगसे समझाया है । इसमे लगभग ९४ कदवृत्त हैं । ग्रथका बन्ध प्रौढ है । इसकी प्रशसा कविने स्वय की है । रचना सुन्दर है । यह प्रकाशित है ।

बन्धुवर्मा (ई. सन्. लगभग १२००)

इसने हरिवंशाभ्युदय तथा जीवसम्बोधन की रचना की है। यह वैश्य कवि है। जीवसम्बोधनाके अन्तिम पद्यमे इसने अपनेको स्पष्ट 'नुतवैश्योत्तम' बतलाया है। वर्णोल्लेख के अतिरिक्त कविने अपनी रचनामे माता-पिता आदि अपनी अन्य किसी भी बात का उल्लेख नही किया है। इसलिये इसके सम्बन्धमे इस समय विशेष कुछ भी नही लिखा जा सकता।

कमलभव (ई सन् लगभग १२३५) ने अपनी रचना मे इसका स्मरण किया है। बल्कि वह भी 'गतबन्धुवर्मा' के रूप मे। इससे ज्ञात होता है कि बन्धुवर्मा कवि कमलभव से पहले हुआ था। परन्तु यह पता नही चलता है कि कितना पहले हुआ था। कर्णाटक कविचरिते के मान्य लेखक आर नरसिहाचार्यके मतसे इसका समय ई सन् लगभग १२०० है।

इसे नागराज, मगरस आदि कवियोने सादर स्मरण किया है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि बन्धुवर्माने अपनी रचनामे किसी भी पूर्व कविका स्मरण नही किया है। इसने अपने कविताचातुर्यकी प्रशसा स्वय की है। इसके हरिवशाभ्युदय मे २२वे तीर्थकर नेमिनाथका चरित्र सुन्दर ढगसे अकित है। यह १४ आश्वासोमे विभक्त है। ग्रथावतारमे प्रथमत नेमिनाथ की स्तुति है। बाद सिद्धादि, यक्षयक्षी, सरस्वती आदि के स्तुतिपूर्वक कविने ग्रथको प्रारम्भ किया है। आश्वासोके अतमे यह गद्य है—

' अर्हत्सर्वज्ञपादपद्मविराजितोत्तमाग-श्रीबन्धुवर्मनिर्मित .'

आर नरसिहाचार्य के शब्दोमे ही बन्धुवर्माका बन्ध

ललित एव प्रासबद्ध है । कविका दूसरा ग्रंथ जीवसम्बोधना है । इसने इसमें जीवको सम्बोधित करता हुआ अध्रुव आदि द्वादश अनुप्रेक्षाओं को सुन्दर ढगसे बतलाया है। ग्रथ (१)अध्रुवाभिधान (२)अशरणाभिधान (३)एकत्वाभिधान (४)अन्यत्वाभिधान (५) ससाराभिधान (६) लोकाभिधान (७) अशुचित्वाभिधान (८) आस्रवाभिधान (९) सवराभिधान (१०) निर्जराभिधान (११) धर्माभिधान तथा (१२)बोध्यभिधान इस प्रकार १२ अधिकारोमे विभक्त है ।

ग्रथावतारमें जिनस्तुति है। बाद कविने सिद्धादि तथा सरस्वती स्तुति-पूर्वक ग्रथको प्रारभ किया है। अधिकारोकेअन्तमे यह गद्य है-

' . जिनशासनप्रभासनतीर्थोदितविदितबन्धुवर्मनिर्मित . '

ग्रथ ललित एव नीति–वैराग्यबोधक एक सुन्दर कृति है । जैनेतर विद्वान् भी इसकी प्रशसा करते है ।

जैन धर्ममे द्वादश अनुप्रेक्षाओका स्थान बहुत ऊचा है । वस्तुत ये ही मानव को वैराग्यकी पराकाष्टामे पहुचाती है । विरक्तिके प्रारभमे तीर्थकरो तक इन्हीके द्वारा अपने वैराग्य को बढाते हैं । बल्कि पापभीरू एक सच्चा धर्मश्रद्धालु प्रतिदिन नियमसे इन अनुप्रेक्षाओको मनन करता है । इससे नियमित आनेवाले कर्मोका सवर होता है। अनुप्रेक्षाओका अर्थ गहरा एव पुन पुन चिन्तन है। जो चितन तात्त्विक और गहरा होगा उसके द्वारा राग-द्वेष आदि वृत्तियोका होना रुक जाता है । इसलिये ऐसे चितनका सवरके उपायके रूपमें वर्णन किया है। जिन विषयोका चितन जीवनशुद्धिमे विशेष उपयोगी हो सकता है,उन्हे बारह अनुप्रेक्षाओके रूपमे गिनाया है। अनुप्रेक्षा को भावना भी कहते हैं ।

पार्श्व अथवा पार्श्वनाथ (ई. सन् १२०५)

इसने पार्श्वनाथपुराणकी रचना की है। इसका पिता *लोकनायक, माता कामियक्क, अग्रज* नागण और गुरु वासुपूज्य है। कविने अपने पार्श्वनाथ पुराणको शा श ११४४ ई सन १२२२ मे रचा है। श्रीमान् आर नरसिंहाचार्यका मत है कि यह पार्श्व सौदत्तीय राजा कार्तवीर्य चतुर्थ (ई सन् १२०२-१२२०) की सभामे आस्थान कवि रहा होगा। क्योकि इसने अपने ग्रथमे 'श्रीकार्तवीर्यनृपाल-। क्ष्मीकवि' आदि के रूपमे अपनेको स्पष्ट कीर्तवीर्य का आस्थान-कवि घोषित किया है। कवि पार्श्वका समसामायिक रट्ट शासक कार्तवीर्य चतुर्थ ही ठहरता है। साथ ही साथ यह लक्ष्मण राजाको कार्तवीर्यका पुत्र बतला रहा है। अन्यान्य शिलालेखो से सिद्ध होता है कि राजा लक्ष्मण ई सन् १२२९ मे राज्य करता रहा। इन कारणोसे आचार्यजीका उपर्युक्त मत सर्वथा समुचित जचता है।

इसके अतिरिक्त बम्बई शाखा की रा ए सो के जर्नल मे प्रकाशित एक शिलालेखके अन्तिम पद्यमें उस शिलालेख का लेखक पार्श्व बतलाया है। यह शिलालेख शा श ११२७, ई सन् १२०५ मे लिखा गया था। इसमे कूडिमडलान्तर्गत वेणुग्राम के रट्टान्वय का शासक कार्तबीर्य तथा मल्लिकार्जुनका राज्यशासन एव कार्तवीर्य के द्वारा मडलाचार्य शुभचन्द्र भट्टारकको दिये गये दानका उल्लेख है। कविके द्वारा अपने ग्रथमे स्तुत कातवीर्यके काल मे ही यह शासन लिखा गया है और ग्रथमे अपने लिये प्रयुक्त 'कविकुलतिलक' यह उपाधि भी शिलालेख के अन्तिम पद्यमें स्पष्ट मौजूद है।

अत इस शिलालेखको ई. सन् १२०५ में इसीने लिखा होगा।

इसे सुकविजनमनोहर्षसस्यप्रवर्ष, विबुधजनमन पद्मिनी-पद्ममित्र, कविकुलतिलक ये उपाधिया प्राप्त थी। इसने पूर्व कवियोमे पंप, पोन्न, रन्न, कर्णपार्य और गुणवर्माके सिवा धन-जय, भूपालदेव, आचण्ण, अग्गल, नागचन्द्र, बोप्पण, सिंहप्रायो-पगमनकर्तृ केशियण्ण, स्तनशतककर्तृ काम, नेमिचन्द्र, बालचन्द्र तथा बासुदेव इन कवियोको भी भिन्न-भिन्न पद्योमे स्मरण किया है। पार्श्वके द्वारा स्मृत उपर्युक्त कवियोमे धनजय तथा भूपालदेव ये दोनो सस्कृत कवि मालूम होते हैं। अगर मेरा यह अनुमान सत्य हो तो धनजय द्विसधानकाव्य एव भूपालदेव जिनचतुर्विंशतिकाके रचयिता होने चाहिये। ये दोनो नामी कवियोमे हैं। महाकवि धनजयका द्विसधानकाव्य तो एक प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसका अपर नाम राघवपाण्डवीय है। इस काव्यमे यह विशेषता है कि इसमे रामायण तथा महा-भारत दोनोकी कथा एक साथ वर्णित है। वह भी बडी खूबीके साथ। इसीसे विज्ञ पाठकोको महाकवि धनजयकी प्रतिभाका पता अपने आप आसानीसे लग सकता है।

कवि पार्श्वका पार्श्वनाथपुराण चम्पूरूपमे है। यह १६ आश्वासोमे विभक्त है। इसमे २३ वे तीर्थंकर पार्श्वनाथका पवित्र चरित्र वर्णित है। कविने स्वय अपने इस ग्रथकी तारीफ की है। ग्रथावतारमे पार्श्वनाथस्तुतिके बाद कवि, सिद्धादि, उमास्वाति, जटाचार्य, कुदकुद, समतभद्र, कविपर-मेष्ठी, पूज्यपाद, अकलक, विद्यानन्द, वीराचार्य, वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, सोमदेव, वादिराज, मुनिचन्द्र, कटकोपा-ध्याय श्रुतकीर्ति, नेमिचन्द्र, वासुपूज्य, तच्छिष्य श्रुतकीर्ति,

मुनिचन्द्र, तच्छिष्य वीरनन्दी, नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक, बलात्कार गणीय मुनि उदयचन्द्र, भट्टारक नेमिचन्द्र, तच्छिष्य मुनि वासुपूज्य, अष्टोपवासी मुनि रामचन्द्र, नानानृपपूज्य श्रीनदि-योगी, शुभचन्द्र, कुमुदचन्द्र, कमलसेन, माधवेन्दु शुभचद्रशिष्य ललितकीर्ति, नदियोगिशिष्य विद्यानन्द, भावसेन, कुमुदचन्द्रके शिष्य वीरनन्दीकी स्तुतिके साथ ग्रथ प्रारभ हुआ है।

आश्वासोके अतमे यह गद्य है–' विदितविबुधलोकनायका-भिपूज्य–वासुपूज्यजिनमुनिप्रसादासादितनिर्मलधर्मविनुतविनेय–जनवनजवनविलासितकविकुलतिलकप्रणूतपार्श्वनाथप्रणीत ।'

महाकवि जन्न (ई. सन्. १२३०)

यह 'यशोधरचरित' तथा 'अनतनाथपुराण' का रच-यता है। 'मोहानुभवमुकुर' (ई सन् लगभग १४००) नामक ग्रथसे पता लगता है कि इसका 'स्मरतत्र' नामक एक ग्रथ और होना चाहिये। परतु वह अभीतक उपलब्ध नही हुआ है। यह कम्मे वशका काश्यपगोत्रीय है। इसका पिता शकर तथा माता गगादेवी थी। शकर होयसल राजा नरसिंह (ई सन् ११४१–११७३) का कटकोपाध्याय था। इसे सुमनोबाण नामकी उपाधि प्राप्त थी। कविका जन्म आषाढ कृष्ण त्रयोदशीके शुभ दिन, रेवती नक्षत्रमे, शिवयोगमे हुआ था। इसकी धर्मपत्नी दण्डाधिनाथ रेचणकी पुत्री लकुमा-देवी थी। काणूर्गणीय माधवचन्द्रके शिष्य गडविमुक्त मुनि राम चन्द्रदेव इसके गुरु थे। जगदेकमल्ल (ई सन् ११३८-११५०) का कटकोपाध्याय अभिनव शर्ववर्मा उपाधिधारी नागवर्मा (द्वितीय) इस का उपाध्याय था।

'सूक्तिसुधार्णव' का रचयिता मल्लिकार्जुन (ई. सन् लगभग १२४५) कविका बहनोई था। 'शब्दमणिदर्पण' का रचयिता केशिराज (ई सन् लगभग १२६०) इसका भागिनेय था। इसमे शक नही है कि इस प्रकार कवि जन्न बडा भाग्यशाली था। जन्न, तर्क, व्याकरण, साहित्य और नाट्य आदि शास्त्रोका ही पारगामी नही था, दृढकाय तथा साहसी यह शस्त्रविद्या का भी विशेष अभ्यासी था। इस प्रकार शस्त्र-शास्त्र दोनोमे प्रवीण होनेके कारण तत्कालीन शासक वीरनरसिंह के यहा यह मत्री तथा दण्डाधीश इन उन्नत उभय पदोको पा लिया था।

वस्तुत कविके शस्त्र-शास्त्र सम्बन्धी अद्भुत पाण्डित्यने ही इसे गुणग्राही राजा वीरनरसिंहकी ओर आकृष्ट कर लिया था। इसमे सन्देह नही है कि इसका प्रभाव पहले जनतामे फैलकर बाद राजसभामे पहुचा होगा। यद्यपि कवि सभी कलाओमे प्रवीण था। फिर भी इसे काव्यकलामें विशेष आदर एव अभिमान था। बाल्यावस्थासे ही कवितादेवी इस पर मुग्ध हो गई थी। इसके लिये कविके द्वारा लिखे गये चेन्नरायपट्टण (शक १११३ ई. सन् ११९१, न. १७९) तथा तरीकेरे (शक १११९, ई. सन् ११९७, न ४५) के शिलालेख ही उज्वल निदर्शन है। इस प्रकार बाल्यावस्थामे ही अकुरित इसकी कविताशक्ति इसके अविरत व्यवसायसे यथा-शीघ्र लता होकर उसमे यशोधरचरित तथा अनन्तनाथपुराण जैसे दो मनोहर सुगन्धित पुष्प विकसित हुये जिनकी गन्धसे रसिक साहित्यिकोका कोमल हृदय सहसा आकृष्ट हुआ। केवल

भावुक साहित्यिक ही नही, स्वय राजा वीर बल्लाल भी उपर्युक्त पुष्पोकी अलौकिक गधसे अछूत नही रख सका। सहृदय गुणग्राहक राजा वीर बल्लालने जन्नकी कवितासे मुग्ध होकर इसे कविचक्रवतिकी उपाधि प्रदान की।

कविने अपने यशोधरचरितको वीर बल्लाल (ई सन् ११७३-१२२०) के शासन-काल मे शुक्ल सवत्सर अर्थात् ई सन् १२०९ म तथा अनन्तनाथपुराण को वीर बल्लालके पुत्र वीर नरसिह (ई सन् १२२०-१२३५) के राज्यकाल मे विकृत सवत्सर अर्थात् ई सन् १२३० मे रचा है।

यह जन्नके सिवा जनार्दन, जन्नमग्स, जन्नय,जन्निग तथा जानकि इन नामोसे भी विश्रुत था। कवि साहित्यरत्नाकर, कविभाललोचन, कविचक्रवर्ती, विनेयजनमुखतिलक, राजविद्वत्सभाकलहस, कविवृन्दारकवासव और कविकल्पलतामन्दार इन उच्च उपाधियोसे विभूषित था। जन्नको लौकिक विद्यामे जितनी रूचि थी उतनी ही अध्यात्मविद्यामे भी। इसीलिये यह इसकी पूर्तिके लिये उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् माधवचद्र त्रैविद्यके शिष्य गडविमुक्त मुनि रामचन्द्रके पादमूलमें पहुचा। वहापर जैनधर्मके तत्त्वोको भले प्रकार अध्ययन कर इसने अपने अन्यादृश पाडित्य को केवल जैनधर्मके उद्धारके लिये ही व्यय किया। वस्तुत इसकी बुद्धिशक्ति, कार्यशक्ति, कविताशक्ति तथा धनशक्ति सब कुछ जैनधर्मके प्रचारके लिये समर्पित कर दी गई थी। लोकमें सामान्यतया सरस्वती लक्ष्मीमे परस्पर असहिष्णुता देखी जाती है। इसीलिये विद्वान् प्राय निर्धन होते हैं। परतु कवि जन्नमें यह बात नही थी।

इसने इस बातको ' सौभाग्यसपन्न ' आदि पुष्ट शब्दोंके द्वारा अपनी रचनाओमें स्वय व्यक्त किया है । तात्पर्य यह है कि इसपर सरस्वती ही नहीं, लक्ष्मी भी प्रसन्न हो गई थी । जन्न बडा उदारी था । यह निर्धनोको बराबर दान दिया करता था । कवि कहता है कि मैने अपने हाथोको कभी दूसरोके सामने नही पसारा है । बल्कि बराबर मैने दूसरोको दिया है । इसने गडरादित्यके राज्यमे अनन्तनाथ तीर्थकर का भव्य भवन एव द्वारसमुद्रमे विजयपार्श्व जिनेश्वर के आलय का द्वार स्वयं बनवाया है ।

इसमे सन्देह नहीं है कि कवि जन्न का सारा जीवन साहित्यसेवा तथा धर्मसेवामे ही व्यतीत हुआ है । वस्तुत इसका अमेय पाण्डित्य जिनधर्म की प्रभावना मे ही खर्च हुआ है । इसके यशोधरचरित और अनन्तनाथपुराण ये दोनो जैन धर्मके प्रचारके लिये ही रचे गये थे । अनन्तनाथपुराण मे कविने स्पष्ट कहा हैं कि यह ग्रंथ कर्तव्यपालनार्थ ही मेरे द्वारा रचा गया है । बराबर जैनकवियोका यह एक आदर्श मार्ग रहा है कि वे श्रमसम्पादित अपनी बहुमूल्य कविताको महा-पुरुषोकी पवित्र जीवनी के ग्रथनमे ही सफल करते आ रहे हैं ।

कवि जन्नने पूर्व कवियोमे गुणवर्मा, पप, पोन्न, नागवर्मा, रन्न, नागचन्द्र, अग्गल, नेमिचन्द्र और सुमनोबाण का स्मरण किया है । इसी प्रकार इसकी स्तुति अण्डय्य (ई सन् लगभग १२३५) कमलभव (ई सन् लगभग १२३५) मल्लिकार्जुन (ई सन् लगभग १२४५) कुमुदेन्दु (ई सन् लगभग १२७५) मधुर (ई सन् लगभग १३८५) मगरस (ई सन् १५०८) नजुड (ई सन् लगभग १५२५) और बाहुबली (ई सन् लग-

भग १५६०) आदि कवियोने की है ।

अखिलकलानिपुण, चतुर्विधपण्डित, नववैयाकरण, तर्क-विनोद, भरतसुरतशास्त्रविलास, कविराजशेखर, यादवराजछत्र, अखिलबधुजनमित्र, सुकविवल्लभ, उभयकविचक्रवर्ती, असहाय-कवि, परमश्रीजिनपादपल्लवनिताल, निर्मल, जैनमन्दिरनिर्माण-धन, कवीन्द्रपरिषद्भालाक्ष, गगानन्दन और शकरपुत्र आदि शब्दोके द्वारा कविने अपने गुण और कविताचातुर्यको स्वय व्यक्त किया है ।

कविका यशोधरचरित एक वर्णक प्रबन्ध है । इसमे गद्य नही है । सिर्फ आठ वृत्त है । शेष सभी कन्द पद्य है । यह ग्रथ चार अवतारोमे विभक्त है । इसमे कुल कन्दवृत्त ३११ है । प्रस्तुत ग्रथ मे कविने पच महाव्रतोमे अन्यतम एव प्रमुख अहिसाव्रत की महिमाको बडे ही चित्ताकर्षक ढगसे समझाया है । राजा मारिदत्त के द्वारा देवी मारीको बलिप्रदा-नार्थ मगाये गये मनुष्ययुगलके द्वारा कही गई अपनी जन्मान्तर कथाओसे राजा परमहिसासक्तिको सर्वथा त्याग कर स्वय ससारसे विरक्त हो जाता है, यही इसका कथासार है ।

सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश आदि भाषाओ मे एत-द्विषयक कई ग्रथ हैं । जैसे-यशस्तिलकचम्पू, यशोधर काव्य और जसहरचरिउ आदि । इनमे यशस्तिलकचम्पू एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है । इसके रचयिता राजनीतिशास्त्र के एकान्त मर्मज्ञ आचार्य सोमदेवसूरि हैं ।

ग्रथावतार मे जन्नने बीसवे तीर्थंकर मुनिसुव्रत, सिद्धादि वीरसेन, जिनसेन, सिहनन्दी, कोडकुद, समन्तभद्र, गुणभद्र, तथा पूज्यपाद के स्तुतिपूर्वक सल, विनयादित्य, एरेयग,

बिट्टिदेव, नरसिंह और वीर बल्लाल इस प्रकार होयसल राजाओकी परपराको विस्तारसे बतलाया है । साथ ही साथ अपने आश्रयदाता वीर बल्लालकी स्तुति विशेषरूपसे की है । अवतारोके अतमे यह गद्य है-' परमजिनसमयकुमुदिनीशरच्चन्द्रचैत्रचन्द्रम-सदमलरामचन्द्रमुनीन्द्रपदभक्त-जानकि '

श्रीमान् आर नरसिंहाचार्यके शब्दोमे 'इसका बध ललित, मधुर, गभीर तथा हृदयगम है । कवि मधुरने इसे कर्णाटक कविताका सीमापुरुष जो कहा है वह उचित ही है । निरर्गलरूपसे प्रवाहित होनेवाली इसकी कविताके प्रवाहको देखकर बडा आश्चर्य होता है ।'

अब कविके द्वितीय ग्रथ अनतनाथपुराणको लीजिये । यह एक चम्पूकाव्य है । इसमे १४ वे तीर्थंकर अनतनाथकी पवित्र जीवनी चित्रित है । साथ साथ इसमे इसी वशके बलदेव सुप्रभ, वासुदेव, पुरुषोत्तम तथा प्रतिवासुदेव मधुकैटभका चरित्र भी वर्णित है । ग्रथ १४ आश्वासोमें विभक्त है । प्रतिज्ञानुसार कविने इसमे अलकारोको विशेष स्थान नही दिया है । यह पुराण दोरसमुद्रके शान्तीश्वर जिनालयमे समाप्त हुआ था । इसमे यशोधरचरितके भी अनेक पद्य उपलब्ध होते हैं । इससे स्पष्ट है कि अनतनाथ पुराण यशोधरचरितके पीछे रचा गया था ।

आचार्य गुणभद्रकृत उत्तरपुराण, चावुडरायकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण आदि प्राचीन ग्रथोको आदर्श मानकर नूतन सन्निवेशोके साथ पाठक एव श्रोताओको अरुचि उत्पन्न न हो इस शैलीमे काव्यलक्षणानुसार पपादि पूर्व कवियोके

मार्गको अनुसरण करता हुआ महाकवि जन्नने इस काव्यकी रचनाद्वारा अपनी कविताप्रौढिमाको सुव्यक्त किया है। वास्तवमे इसके पठनसे रसिकोको मनोरजन तथा भावुक भव्योको जिनेन्द्र भगवान्मे अनन्य तथा अटूट भक्ति अवश्य उत्पन्न होनी चाहिये।

इसमे कविने प्रतिदिन अनुभवमे आनेवाली बातोको ही चित्ताकर्षक शैलीमे खूबीके साथ वर्णन किया है। काव्य-शरीरकी सृष्टिके द्वारा सबके मनको आकृष्ट कर निरर्गल रूपसे कथा कहनेवाले जन्नका लोकानुभव वस्तुत अधिक बढा चढा हुआ था। इसमे पवित्र पचकल्याणोका वर्णन, जैन तत्त्वोका मार्मिक उपदेश, मुक्तिकी साधनारूप तपस्याका हृदयग्राही वर्णन, तीर्थंकर अनतकी बाललीला, यौवन प्राप्त होनेपर माता-पिताओको कन्यान्वेषणकी गहरी चिन्ता, विवाहका समारोह, विषयानुभव, इसके उद्दीपक वसतकाल, चन्द्रादय आदिका वर्णन, बाद ससारसे विरक्ति, तपस्या, केवलज्ञानकी उत्पत्ति तथा नि श्रेयसकी प्राप्ति आदि बातोका सुदर एव सजीव वर्णनके दर्शन होते है।

नूतन सन्निवेशो, विभावानुभावादि भावो तथा श्रृगार वीर, करुणा, हास्य आदि रसोके द्वारा कविने प्रस्तुत काव्यको बहुत ही चित्ताकर्षक बनाया है। इसके अमूलाग्र पठनसे सहृदय पाठकोका कोमल हृदय एक बार अवश्य प्रफुल्लित हो जायगा। खास कर सुनन्दा तथा चण्डशासनके उपाख्यानमे जन्नकी अनुपम कविताशक्ति देखने ही लायक है। क्रूरी तथा दुष्ट चण्डनकेशास द्वारा पतिव्रताशिरोमणि सुनन्दाका कारा-

गार मे रखा जाना, वहापर अपनी रायपर न आनेपर उसे बुरी तरह सताया जाना, उसके श्रद्धेय पति वसुषेण के मस्तक को सामने लाकर रखना, उसे देखकर सुनन्दा का देहत्याग करना आदि वर्णन वस्तुत. पठनीय है । इन वर्णनोमें करुणा-रस की विमलगगा निरर्गल रूपसे बह चली है । इन प्रकर-णोमे महाकवि जन्न के अदभुत पाण्डित्य को देखकर सहृदय विज्ञ पाठक महाकवि की प्रशसा मुक्त-कण्ठ से किये विना नही रह सकते ।

ग्रथावतार मे कवि ने अनन्तनाथ की स्तुति के बाद सिद्धादि, सरस्वती, यक्षयक्षी, जिनशासन, श्रुतकेवली, गृध्रपिछ कोडकुद, जटासिहनन्दी, भूतबलि, पुष्पदन्त, जिनसेन, वीरसेन, समन्तभद्र, गुणभद्र, पूज्यपाद, अकलक, काणूर्गणीय इन्द्रनन्दी, गुणचद्र, इनके शिष्य कनकचन्द्र तथा माधवचन्द्र और माधव-चन्द्रके शिष्य गण्डविमुक्तशिखामणि मुनि रामचन्द्रदेव की स्तुति क्रमसे की है । बाद अपनी पत्नी लुकुमादेवी के गुरु प्रसिद्ध आचार्य ' जावलि ' के मुनिचन्द्र, उनके शिष्य कुलभू-षण, सकलचन्द्र, सकलचन्द्र के शिष्य माधवचन्द्र और इनके शिष्य बालचन्द्र कविकदर्पको भी जन्नने सादर स्मरण किया है।

ग्रथान्तमे महाकवि ने ग्रथरचनाकालीन अपने स्वामी राजा वीर नरसिह (ई सन् १२२०-१२३५) को हृदयसे आशीर्वाद दिया है । आश्वासोके अन्तमे यह गद्य है ।

' परमजिनसमयवनबसन्तसन्तानाराम-रामचन्द्रप्रसादासा-दितरत्नत्रयाभरणकिरणप्रसन्नान्त करण -- कविचक्रवर्तिबिरुद कविभाललोचन-जनार्दनदेवविरचित . '

जन्न के उपर्युक्त सक्षिप्त परिचय से विज्ञ पाठको को

मेधावी महाकवि के अद्भुत पाण्डित्य, अमेय कविताशक्ति, गहरा लोकानुभव, व्यापक शास्त्राध्ययन, अनुपमवर्णनानैपुण्य, विशद अलकार तथा छन्दोज्ञान, सूक्ष्म आगमज्ञान, निर्मलभाषा-ज्ञान आदिका पता स्वय लग जायगा। वस्तुत जन्न महाकवि है।

गुणवर्मा द्वितीय (ई सन् लगभग १२३५)

यह 'पुष्पदन्तपुराण' तथा 'चन्द्रनाथाष्टक' का रचयिता है। इसका आश्रयदाता राजा कार्तवीर्य का सामन्त शातिवर्मा है। कार्तवीर्य के गुरु मुनिचन्द्र ही इसके भी गुरु है। पूर्व कवियोकी स्तुति मे इसने जन्न (ई सन् १२३०) की स्तुति की है। इसलिये यह तो निर्विवाद सिद्ध हुआ कि गुणवर्मा जन्न से पूर्व का नही, बाद का है। मल्लिकार्जुन (ई सन् लगभग १२४५) ने इसके पुष्पदन्तपुराण के कुछ पद्योका अनुवाद किया है। इसलिये यह भी निश्चित है कि कवि मल्लिकार्जुन से पहले हुआ था। इन आधारोपर श्रीमान् आर नरसिंहाचार्य की राय है कि यह ई सन् १२३५ मे जीवित रहा होगा।

उक्त आचार्यजीके ही मतानुसार ई सन् १२२९ मे उत्कीर्ण सौदत्ति के शिलालेखमे प्रतिपादित कार्तवीर्य, मुनिचन्द्र और शान्तिनाथ ही निस्सन्देह गुणवर्माके द्वारा स्मृत कार्तवीर्य मुनिचन्द्र तथा शान्तिनाथ है। शिलालेख मे शान्तिनाथको मुनिचन्द्र का अमात्य बतलाया है। इसके सिवा लेख मे इसे 'इष्टशिष्टचिन्तामणि' भी कहा है। पुष्पदन्तपुराणमे कविने भी 'इष्टशिष्टकल्पकुज' के रूपमे शान्ति-वर्मा की स्तुति की है। उपर्युक्त कार्तवीर्य ई सन् १२०२ से १२२० तक शासन करता रहा। इसीकी सभा मे शान्तिवर्मा ने कविसे

पुष्पदन्तपुराणको रचनेके लिये प्रेरणा की थी। यह बात पुष्प-दन्तपुराणसे ही सिद्ध हो जाती है।

मालूम हुआ है कि कार्तवीर्य कुतल-देशस्थ कूडिमे राज्य करता रहा। अत कविका जन्मस्थान भी प्राय. कूडि ही रहा होगा। ऊपर कहा जा चुका है कि गुणवर्माके गुरु पण्डित मुनिचन्द्रदेव थे। बल्कि कविने अपनी रचनामे स्पष्टरूपसे कहा है कि उन्हीकी कृपासे मै कविता बनाने योग्य हुआ हू।

इसे कवितिलक, सरस्वतीकर्णपूर, सहजकविसगोवरहस, प्रभुगुणाब्जिनीकमलहस, गुणरत्नभूषण, भव्यरत्नाकर, श्रीराज-विद्याधर, मानमेरु और साक्षरसमयावलम्बी ये उपाधिया प्राप्त थी। श्री नरसिहाचार्यके मतसे इसे 'काव्यसत्कलार्णव-मृगलक्ष्म' उपाधि भी प्राप्त थी। कविने पूर्व कवियोमे गुण-वर्मा (प्रथम) पप, पोन्न, रन्न, अग्गल, नागवर्मा, नेमिचन्द्र, जन्न तथा नागचन्द्रको सादर स्मरण किया है। विविधकला-भिज्ञ, भावविद, रसरसिकनुचितकविताचतुर, सुविवेकनिधान, विबुधवत्सल, मानमेरु, नृपततिमहित, कवितिलक और काव्य-सत्कलार्णवमृगलक्ष्म आदि विशिष्ट शब्दोके द्वारा इसने अपने गुणोको स्वय व्यक्त किया है।

इसका पुष्पदन्तपुराण एक चम्पू ग्रथ है। यह १४ आश्वासोमे विभक्त है। इसकी कुल पद्यसख्या १३६५ है। गद्य अनेक है। इसमे ९ वे तीर्थंकर पुष्पदन्तकी पुण्यजीवनी सकलित है। ग्रथका बध ललित तथा सुरस है। जहा तहा इसमे कर्णाटकमे प्रचलित अनेक नीतिप्रद लोकोक्तिया भी

छन्दोरूपमे निवद्ध है। काव्यरसास्वादके बाधकस्वरूप, इसीलिये अलकार शास्त्रियोके द्वारा अपरिगृहीत एव पपादि महाकवियोसे परित्यक्त वृत्यनुप्रास, यमक आदि शब्दालकार इसमे अनेकत्र पाये जाते है। वस्तुत ध्वनि काव्यका प्राण है। कविने इसको पूर्णरूपसे अपनाया है। शास्त्रीय तथा सस्कृत साहित्यमे प्रचुरपरिणाममे पाये जानेवाले काकतालीय, अजाकृपाणीय आदि अनेक न्याय भी इसमे जहा तहा प्रयुक्त है।

इस पुराणका कथाभाग अन्य पुराणोके कथाभागकी तरह अनेक जन्मातर कथाओसे पाठकोको अरुचि पैदा नही करता है। इसका कथाभाग बहुत सक्षिप्त है। बल्कि इतनी छोटीसी कथाको बढाकर १४ आश्वासोमे परिवर्द्धित कर देना सामान्य कविका काम नही है। इसमे कविकी कविताशक्तिका पता पाठकोको स्वय लग जाता है। इतने लम्बे होनेपर भी कथाभागमे कोई भी भाग अप्रकृत तथा असबद्ध नही मालूम देता है। पहले भी लिखा जा चुका है कि जैन पुराणोका प्रधान रस शान्त है। शृगार आदि अन्य रस इस प्रधान रसके सिर्फ सहायक है।

जिस प्रकार तिक्तौषधमे प्रवृत्ति करानेके लिये बच्चोको शर्करा आदि मधुर पदार्थ दिया जाता है उसी प्रकार मुक्तिमे अल्पादर रखनेवाले व्यक्तियोको उस ओर आकर्षित करनेके लिये पूर्वमे शृगार आदि रसोका प्रयोग जैन काव्योमे किया जाता है। ऐसी दशामे मोक्षमें अभिनिवेशोत्पादक शान्तरसप्रधान काव्योमे शृगार आदि रसोको अधिक न बढाकर

प्रधानरसकी यथावत् रक्षा करनेवाले कविका प्रतिभाचातुर्य ही वास्तवमे श्लाघनीय है ।

जैन कवियोमे किसी के मत से पुराण के अग ८ है और किसी के मत से पाच हैं । मगर इसमे तो आठो अग मौजूद हैं । आर नरसिंहाचार्यके ही शद्वोमे गुणवर्माका बन्ध प्रौढ एव प्रासबद्ध है ।

ग्रथावतार में इसने तीर्थकर पुष्पदन्तके पश्चात् सिद्धादि, सरस्वती, यक्षयक्षी, अनुबद्धकेवली, श्रुतकेवली, दशपूर्वधारी, एकादशागधारी और आचारागधारी इन्हे सादर स्मरण किया है । बाद कोडकुद, गृध्रपिंछ, बलाकपिंछ, मयूरपिंछ, अर्हद्बलि, भूतबलि, पुष्पदन्त, अकलक, पूज्यपाद, विद्यानन्द, कविपरमेष्ठी वीरसेन, जिनसे, गुणभद्र, जटासिंहनन्दी, एलाचार्य, दिगबर, कुलचन्द्र, योगीन्द्र देवचन्द्र और मुनिचन्द्र की स्तुति की है । आश्वासो के अन्त मे यह गद्य है—

'. . समस्तभुवनजनसस्तुतजिनागमकुमुद्वतीचारुचद्रायमान मानितश्रीमदुभयकविकमलगर्भ—मुनिचन्द्रपण्डितदेवसुव्यक्तसूक्ति चन्द्रिकापानपरिपुष्टमानसमराल—गुणवर्मनिर्मित '

कवि के चन्द्रनाथाष्टक मे सिर्फ ९ पद्य है । ये महास्र-ग्धरा वृत्तमे रचे गये हैं । प्रत्येक पद्य 'चन्द्रनाथा' शद्व से समाप्त होता है । यह अष्टक कोल्हापुरीय त्रिभुवनतिलक चैत्यालयस्थ चन्द्रनाथकी स्तुति रूप मे निबद्ध है । पुष्पदन्त-पुराण तथा चन्द्रनाथाष्टक ये दोनो विश्वविद्यालय मद्रास की

ओरसे प्रकाशित हो चुके हैं । इसके लिये विश्वविद्यालय वस्तुत धन्यवाद का पात्र है ।

कमलभव (ई. सन् लगभग १२३५)

इसने 'शान्तीश्वरपुराण' लिखा है । इसके गुरु देशीय-गण पुस्तक-गच्छ और कोडकुन्दान्वय के यति माघनदी पडित हैं । कविने पूर्व कवियोमे जन्न (ई सन् १२३०) का स्मरण किया है । इसलिये इतना तो स्पष्ट है कि यह जन्नके बादका है । मल्लिकार्जुन (ई सन् लगभग १२४५) ने अपने 'सूक्तिसुधार्णव' मे इसके गथसे अनेक पद्य उध्दृत किये है । अत यह भी निश्चित है कि कविका इससे कुछ पूर्व होना स्वाभाविक है । इसी आधारपर श्रीमान् आर नरसिंहाचार्य ने कमलभवका समय ई सन् लगभग १२३५ निर्धारित किया है । इस ग्रथके विद्वान् सम्पादकने भी आचार्यजीके ही मतको स्वीकार किया है ।

'कुसुमावलि' का रचयिता देवकवि कमलभवका ग्रथ रचनामे प्रोत्साहक था । बल्कि कुसुमावलिके कुछ पद्य भी कमलभवके शान्तीश्वरपुराणमे उपलब्ध होते हैं । मालूम होता है कि कविको कविकजगर्भ तथा सूक्तिसन्दर्भगर्भ ये उपाधिया प्राप्त थी । इसने पूर्वकवियोमे पप, पोन्न, नागचन्द्र, रन्न, बन्धुवर्मा, नेमिचन्द्र, जन्न और अग्गल का स्मरण किया है ।

अपने गुणो एव कविताचातुर्य की प्रशसा अपनी रचना मे कविने स्वय की है । इसका शान्तीश्वरपुराण १६ आश्वासोमे विभक्त है । ग्रथावतार मे इसने शान्तीश्वर के बाद

सिद्धादि, केवली, अनुबद्धकेवली, श्रुतकेवली, गणधर, यक्षयक्षी, सरस्वती, कोडकुद, भूतबलि, पुष्पदन्त, जिनसेन, वीरसेन, अकलकचन्द्र, अर्हद्वलि, जटासिहनन्दी, गृध्रपिछ, समन्तभद्र, कविपरमेष्ठी, पूज्यपाद, कुलचन्द्र व्रती, कनकनन्दी, मुनि श्रुत-कीर्ति, नयकीर्ति मुमुक्षु, अभयचन्द्र मुनि, वीरनन्दी व्रती, माघ-नन्दी, वर्धमान व्रती, देवचन्द्र व्रती, दामनन्दी व्रती, नेमिचन्द्र, श्रुतकीर्ति भट्टारक, विनयेन्दु व्रती, बालचन्द्र मुनि, पद्मसेन व्रती, जयकीर्ति व्रती, कुमुदेन्दुयोगिशिष्य माघनन्दी मुनि, जय-कीर्ति व्रती, बालचन्द्र पण्डित यति, प्रभाचन्द्र मुनि, काणूर्गणीय भानुकीर्ति मलधारी,वादीभवज्राकुश,तर्कज्ञ हेमनन्दी व्रती,श्रुत-कीर्ति तथा स्वगुरु माघनन्दी पण्डित यति की स्तुति की है ।

आश्वासो के अन्त मे यह गद्य है—

' . . विनमद्मरेन्द्रमौलिमणिकिरणमालापरागपरिरजित चरणसरसिरुहराजितपरमजिनराजसमयसमुदित— सदमलागम-सुधाशरदिन्दु-श्रीमाघनन्दिपडितमुनीश्वरमनोजनितनिरुपमदया-सरस्सरसीसम्भूतसम्भवामल—सुकविकमलभवविरचित '

' कर्णाटक कविचरिते ' के मान्य लेखक आर नरसिंहा-चार्य के शद्धो मे ' इसका ग्रथ ललित है । कवि धाराप्रवाह लिखता है । पद निरर्गल रूप से दौडते हैं '। काव्य मे वर्ण-नीय अश सुन्दर ढग से वर्णित है । '

इसमे सन्देह नही है कि कमलभव एक प्रतिभाशाली कवि है । इसका शान्तीश्वरपुराण मैसूर से प्रकाशित हो चुका है । सम्भव है कि कवि के द्वारा और भी कोई ग्रथ

रचा गया हो। परन्तु अभीतक इसका शान्तीश्वरपुराण एक ही उपलब्ध हुआ है।

महाबल (ई. सन्. १२५४)

इसने 'नेमिनाथपुराण' की रचना की है। यह भारद्वाज गोत्रका है। इसका पिता रायिदेव, माता राजियक्क और गुरु मेघचन्द्र हैं। आश्वासान्त्य गद्यमे कविने 'माधवचन्द्रत्रैविद्यचक्रवर्तिश्रीपादप्रसादासादितसकलकलाकलाप' यो त्रैविद्यचक्रवर्ती माधवचन्द्रको सादर स्मरण किया है। प्राय माधवचन्द्र इसके विद्यागुरु थे।

नेमिनाथपुराण शक ११७६, ई सन् १२५४ मे रचा गया था। इसका उल्लेख कविने अपनी रचनामे स्वय किया है। बकनायक तथा चौडियक्क इन्हे कालयनायक, केतयनायक और नेमनामक तीन लडके थे। केतनायकका अपर नाम क्षेमकर था। इसीने कवि महाबलके द्वारा इसकी रचना कराई।

केतनायक वीर एव स्वय कवि भी था। यह बात उपर्युक्त नेमिनाथपुराणसे ही ज्ञात होती है। केतयकी पत्नी 'करणदीप' श्रीपतिकी पुत्री मरुदेवी थी। इसे चौडला नामक एक पुत्री रही। इसका विवाह कलिदेवके साथ हुआ था। केतयनायकने कोटिबागेके जिनालयमें व्रत किया था। कवि महाबल श्रीकरणके श्रीपति अथवा सिरिगके पुत्र लक्ष्मका गुरु था। महाबलने अपनेको 'सचिव' विशेषणसे उल्लेखित किया है। प्राय यह केतयनायकके ही यहा मत्री रहा होगा।

कवि लिखता है कि अपने ग्रथको सभामें श्रुताचार्य आदिको सुनाकर अपने शिष्य लक्ष्मसे मैंने लिखवाया है।

मालूम होता है कि इसे सहजकविमनोगेहमाणिक्यदीप तथा विश्वविद्याविरिंच नामक उपाधिया प्राप्त थी। इसने पूर्व कवियोमे किसीका नाम नहीं लिया है। लौकिकपारमार्थिकविचारविचक्षण, इन्द्रचन्द्रवैयाकरणप्रभाववचनागमवाक्यति, तर्क-षट्कशिक्षाकरणीयकर्तृ, बहुभेदालकरणाभिधानमालाकुशल आदि विशेषणोके द्वारा कविने स्वय अपने पाण्डित्य एव कविताचातुर्यको व्यक्त किया है।

इसका नेमिनाथपुराण एक चम्पू ग्रथ है। यह १६ आश्वासोमे विभक्त है। इसमे हरिवश तथा कुरुवश दोनोकी कथा प्रतिपादित है। ग्रथावतारमे नेमिनाथकी स्तुतिके बाद कवि, सिद्धादि, सरस्वती, भूतबलि, पुष्पदन्त, जिनसेन, वीरसेन, समतभद्र, कविपरमेष्ठी, पूज्यपाद, गृध्रपिछ, जटासिहनन्दी, अकलक शुभचन्द्र, कुमुदेन्दु मुनि, विनयचन्द्र, माधवचन्द्र, राजगुरु, रट्टराज्यविस्तारक मुनिचन्द्र, बालचन्द्र त्रैविद्य, वादीभवज्राकुश, त्रैविद्येश भावसेन, अभयचन्द्र, यति माघनन्दी तथा पुष्पसेनकी स्तुति की है।

आश्वासोके अतमे यह गद्य है-

' परमप्रवचनपय पारावारशरत्सान्द्र चन्द्र-श्रीमन्मा-धवचन्द्रत्रैविद्यचक्रवर्तिश्रीपादप्रसादागादितसकलकलाकलापसह-जकविमनोगेहमाणिक्यदीपविरचितम् स्याद्वादविद्याप्रभावविधा-यक-क्षेमकरनायककारित '

कर्णाटक कविचरितेके विद्वान् लेखक आर नरसिंहा-चार्यके मतसे महावलका बन्ध प्रौढ है ।

— ० —

इस प्रकार इस प्रकरणमे १० वी शताब्दीसे लेकर १३ वी शताब्दीतक जो कर्नाटकमे प्रसिद्ध कवि हुए है उनका संक्षिप्त परिचय विद्वान् लेखकने कराया है । यह युग पद्ययुग कहलाता है । पद्ययुगमे अनेक प्रतिभाशाली कवियोने अपनी रचनावोके द्वारा कर्नाटक साहित्यको समृद्ध किया है । उनका परिचय इतर प्रातीय बधुवोका एव साहित्यकारोको इस रचनासे होगा । इसलिए यह ग्रथमालासे प्रकाशित किया है ।

—ग्रंथमाला-मत्री